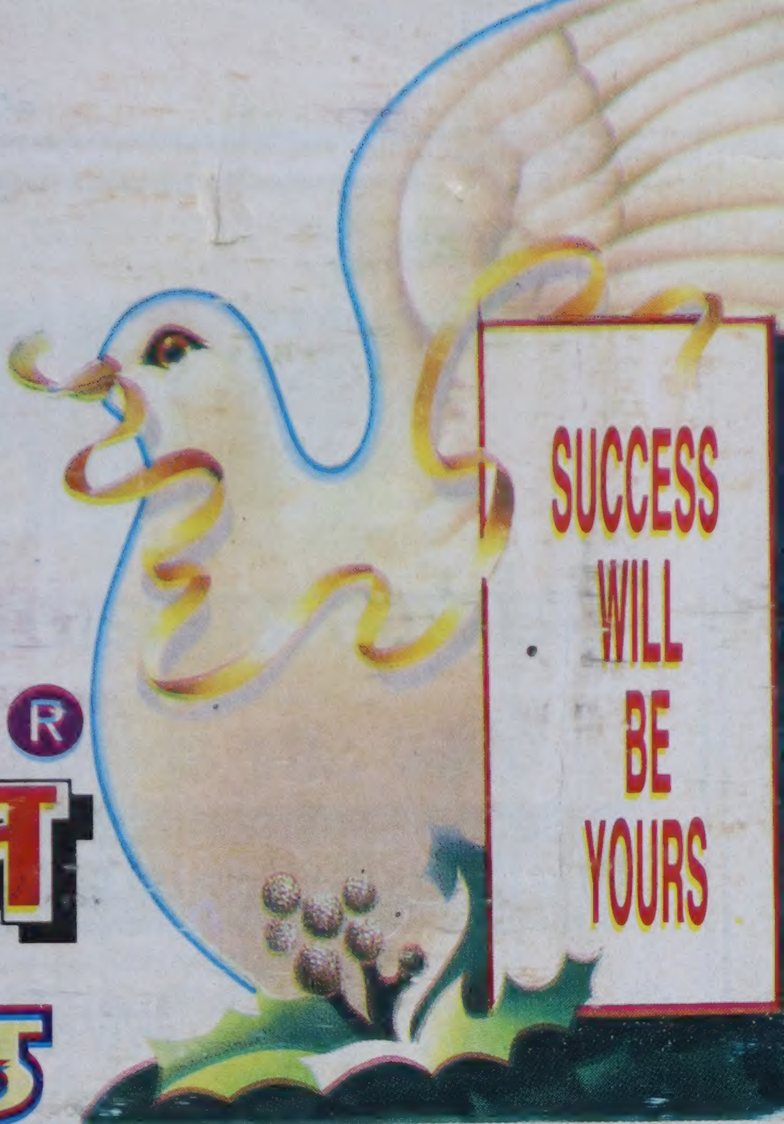




विमल®

सर्वश्रेष्ठ दीपिका

गद्य विविधा

(कक्षा 11 के लिए)







कक्षा 11 के नये एक वर्षीय पाठ्यक्रमानुसार

विमल®

सर्वश्रेष्ठ दीपिका

हिन्दी गद्य विविधा

कक्षा 11 के लिए

(नई पाठ्यपुस्तक अनुसार)

विशेषतायें :

- ✦ कम कीमत, अधिक मैटर
- ✦ दीपिका विषय के अनुभवी व्याख्याताओं द्वारा लिखित
- ✦ दीपिका पर बढ़िया व आकर्षक कवर
- ✦ दीपिका में पाठ्यपुस्तक का सम्पूर्ण हल
- ✦ आधुनिक कम्प्यूटर प्रणाली द्वारा मुद्रित

नवीन संस्करण] [मूल्य : 45.00 रुपये

विषय सूची

1. श्रद्धाभक्ति

(आचार्य रामचंद्र शुक्ल)

लेखक परिचय–आचार्य शुक्ल का जन्म संवत् 1941 में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला के अगोना नामक गाँव में हुआ था । उन्होंने इंटरमीडिएट तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मिर्जापुर के मिशन स्कूल में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया । यहीं से इनके मन में साहित्य के प्रति स्वाभाविक प्रेम का उदय हुआ, जिस कारण से इनके लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे । इन्होंने स्वाध्याय के बल पर हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी भाषा साहित्य का गहन एवं व्यापक अध्ययन किया । साहित्य के क्षेत्र में गहन विकास के कारण इनकी नियुक्ति हिन्दी विश्वविद्यालय बनारस में हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं आचार्य पद पर हुई ।

हिन्दी निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है । इनके निबन्ध सैद्धान्तिक एंवं व्यावहारिक पक्ष से जुड़े-हुए हैं । इनके निबन्ध भाव और मनोविकारों, उत्साह, क्रोध, भय, श्रद्धाभक्ति, ग्लानि और लज्जा आदि विषयों पर हैं । इस कारण से साहित्य और मनोविज्ञान के क्षेत्र में सुन्दर समन्वय हुआ है । इन्होंने द्विवेदी युग से लेखन कार्य प्रारम्भ किया और अपना एक युग परिवर्तित किया जिससे इनका युग शुक्ल युग के रूप में प्रचलित हुआ । हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल कीर्ति-स्तम्भ के रूप में सदैव प्रतिष्ठित रहेंगे ।

पाठ परिचय–"श्रद्धाभक्ति" रामचन्द्र शुक्ल का विवेचनात्मक निबन्ध है । इसमें रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम दोनों विषयों का विश्लेषण किया है और दोनों में अन्तर स्पष्ट किया है कि श्रद्धा के अन्तर्गत किसी वीर, सज्जन, विद्वान, दानवीर, परोपकारी, धर्मात्मा और महात्मा के कर्मों को देखकर उनके प्रति जो भावना उत्पन्न होती है, उसे श्रद्धा कहते हैं । इस प्रकार से श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं—धर्मात्मा या महात्मा, उसके कर्म व श्रद्धा । प्रेम में किसी के रूप सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति लगाव होता है और अन्तः-करण उसे देखते रहने के लिए लालायित रहता है ।

लेखक ने इसमें प्रेम व श्रद्धा में अन्तर स्पष्ट किया है कि प्रेम किसी व्यक्ति के प्रति होता है, उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर जबकि श्रद्धा किसी वस्तु व व्यक्ति के कर्मों को देखकर होती है । प्रेम का क्षेत्र एकांत होता है और श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत होता है । किसी से प्रेम करने वाले एक या दो ही मिलेंगे किन्तु श्रद्धा करने वाले हजारों व्यक्ति मिलेंगे । प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है । प्रेम में मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं किन्तु श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं—श्रद्धालु, श्रद्धेय व बीच की कोई वस्तु । प्रेम का कारण अनिर्दिष्ट और अज्ञात होता है जबकि श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात होता है । एक कर्म प्रधान है तो दूसरा व्यक्ति प्रधान है ।

किसी के रूप को स्वयं देखकर हम तुरन्त मोहित होकर उससे प्रेम कर सकते हैं । कुछ काल तक हमारा भाव लोभ के रूप में रहेगा, फिर वह प्रेम में परिणत हो सकता है । प्रेमी प्रिय के हृदय पर अपना अधिकार चाहता है किन्तु श्रद्धा भाजन पर श्रद्धावान् अपना किसी प्रकार का अधिकार नहीं चाहता । श्रद्धा एक सामाजिक भाव है । इसमें अपनी श्रद्धा

के बदले में हम श्रद्धेय से अपने लिए कोई बात नहीं चाहते। जिस समाज में सदाचार पर, श्रद्धा और अत्याचार पर क्रोध प्रकट करने के लिए जितने अधिक लोग तत्पर पाये जायेंगे उतना ही वह समाज जाग्रत समझा जायेगा। जब तक स्पष्टीकरण के रूप में हमें संसार के लक्ष्य का बोध नहीं होता और हमारे अन्तःकरण में सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक हमें श्रद्धा का अनुभव नहीं होता। श्रद्धा का मूल तत्व है दूसरे का महत्त्व स्वीकार करना। श्रद्धा तीन प्रकार की होती है—(1) प्रतिभा सम्बन्धी (2) शील सम्बन्धी (3) साधन संपत्ति सम्बन्धी। प्रतिभा से तात्पर्य अन्तःकरण की उस उद्भाविका क्रिया से है, जिसके द्वारा कला, विज्ञान आदि नाना क्षेत्रों में बातें या कृतियाँ उपस्थित की जाती हैं। शील सम्बन्धी श्रद्धा प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। शील या धर्म के सामान्य लक्षण संसार के प्रत्येक सभ्य जन-सभुदाय में प्रतिष्ठित हैं। साधन सम्बन्धी श्रद्धा का ठीक भाव समझ लेना आवश्यक है। साधन सम्बन्धी सम्पत्ति का दुरुपयोग एवं सदुपयोग भी हो सकता है। किसी के कर्मों पर जो श्रद्धा होती है, वह साधन-सम्पन्नता पर ही होती है, साध्य की पूर्णता पर नहीं होती है। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि प्रेम व श्रद्धा को सोच-समझकर अपनाने का प्रयत्न करें। प्रेम व श्रद्धा एक तत्व नहीं हैं। दोनों में अत्यन्त भिन्नता है। जिसके प्रति प्रेम है उसके प्रति श्रद्धा नहीं हो सकती और जिसके प्रति श्रद्धा भाव है उसके प्रति प्रेम भावना बलवान नहीं हो सकती है क्योंकि श्रद्धा सार्वजनिक है तो प्रेम एकान्त है।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. श्रद्धा की प्रेरणा का मूल क्या है ?
   (क) विश्वहित-कामना (ख) स्वार्थपरता
   (ग) सुख-भोग उत्तर–(क)
2. किसी के प्रति प्रेम उत्पन्न होने के कारण क्या होता है ?
   (क) रूप (ख) भारी डीलडौल
   (ग) गुण (घ) कर्म उत्तर–(घ)
3. प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं, श्रद्धा में तीन। कौन-कौन से ? उनके नाम लिखिये।

उत्तर–प्रेम में केवल दो पक्ष होते हैं—प्रेमी तथा प्रिय, जबकि श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं—श्रद्धालु, श्रद्धेय तथा मध्यस्थ।

4. श्रद्धा किस प्रकार का भाव है ?
   (क) सामाजिक (ख) व्यक्तिगत
   (ग) पारिवारिक उत्तर–(क)
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—
   (क) श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।
   (ख) प्रेम का कारण बहुत कुछ अनिर्दिष्ट होता है, श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञात रहता है।
   (ग) स्वार्थियों के और अभिमानियों के बीच में श्रद्धा टिक नहीं सकती।

आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. श्रद्धा की परिभाषा दीजिए और बतलाइए कि "विश्व कामना" को श्रद्धा ी मूल प्रेरणा क्यों माना जाता है ?

उत्तर–किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देखकर सके सम्बन्ध में जो स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते । श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य-बुद्धि का संचार है । जब मारे मन में यह विश्वास हो जायेगा कि वह मनुष्य बहुत बड़ा वीर, बड़ा सज्जन, अत्यन्त णवान्, महा दानवीर, महापण्डित, परोपकारी हृदय वाला या महा धर्मात्मा है, तो उसके ति हमारे हृदय में आनन्दानुभूति उत्पन्न होगी, तो हम उसके कार्यों को देखकर, सुनकर सकी प्रशंसा करके उसके सामने नतमस्तक हो जायेंगे । बिना किसी स्वार्थ के भी उसके ति भला करने की कामना करेंगे, यदि उसकी कोई निन्दा करेगा तो भी हम उसको र्दाश्त नहीं करेंगे । इससे यही सिद्ध होता है कि हमारे मन में उसके प्रति श्रद्धा भावना है ।

उन महात्मा व धर्मात्माओं का संसार में होना वांछित है । यही विश्वकामना श्रद्धा ी प्रेरणा का मूल है । जो महात्मा या धर्मात्मा या परोपकारी मनुष्य अपने कर्मों से विश्व ल्याण में सहायक होते हैं तो वे समाज पर कोई भी विपत्ति आती है, उसमें कल्याण का ार्ग दर्शाते हैं । इसी कारण वे श्रद्धा के योग्य होते हैं । ऐसी भावना मानव के लिए ल्याणदायक होती है । उनके प्रति यदि हम श्रद्धा रखते हैं तो 'विश्वकामना' के प्रति द्धा भाव उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न 2. प्रेम और श्रद्धा में क्या अन्तर है ? उदाहरण देकर समझाइए ।

उत्तर–लेखक के मतानुसार प्रेम और श्रद्धा में यह अन्तर है कि प्रेम प्रिय के वतन्त्र कार्यों पर इतना आधारित नहीं है, कभी-कभी किसी के रूप सौन्दर्य को देखकर जसमें उसका कोई लेन-देन है, उसके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है लेकिन श्रद्धा में ऐसा नहीं । किसी की नाक, आँख को देखकर उसके प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकता है किन्तु श्रद्धा हीं । श्रद्धा के लिए यह आवश्यक है कि कोई मनुष्य किसी क्षेत्र में अच्छे कार्य करने के ारण सम्मान का पात्र हो । श्रद्धा का व्यापार-स्थल विस्तृत है किन्तु प्रेम का क्षेत्र एकान्त । प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार किसी मनुष्य से प्रेम करने वाले एक या ो मनुष्य ही मिलेंगे किन्तु श्रद्धा रखने वाले हजारों व करोड़ों मिल सकते हैं । श्रद्धा में धर्म ी भावना प्रबल व दृढ़ होती है और प्रेम में हृदय की भावुकता की भावना बलवान होती । श्रद्धा में व्यक्ति अपने श्रद्धेय के प्रति कुछ भी अपमानजनक वार्ता सुनने के लिए तैयार हीं होता है । उसके प्रति मर-मिटने के लिए आश्वस्त रहता है । उसी प्रकार प्रेमी भी प्रेम मध्य अपमानजनक बात स्वीकार नहीं करता चाहे उसमें कमी ही क्यों न हो, उसके च्छे पक्ष को ही देखता है । प्रेम एक स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण । प्रेम में केवल दो ही पक्ष ते हैं किन्तु श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं । प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता किन्तु श्रद्धा में ध्यस्थ अपेक्षित है । प्रेमी व प्रिय के बीच कोई वस्तु अनिवार्य नहीं, पर श्रद्धालु और श्रद्धेय बीच कोई वस्तु चाहिए । इसी बात का यदि स्मरण रखा जाये तो यह स्पष्ट हो सकता है क यह आनन्दानुभूति प्रेम के कारण है या श्रद्धा के कारण; जैसे यदि किसी कवि या ाहित्यकार का कोई काव्य या साहित्य, चित्रकार का चित्र बहुत सुन्दर लगा तो उस कवि साहित्यकार या चित्रकार के प्रति हमारे मन में जो भावना उत्पन्न होगी वह श्रद्धा

कहलायेगी क्योंकि इसमें काव्य या साहित्य या चित्र मध्यस्थ हैं किन्तु प्रेम में दो ही पक्ष—प्रेमी व प्रेमिका होते हैं। प्रेम का कारण अनिर्दिष्ट व अज्ञात होता है किन्तु श्रद्धा का एक निर्दिष्ट व ज्ञात होता है। प्रेम में व्यक्ति प्रधान होता है किन्तु श्रद्धा में कर्म प्रधान होता है। प्रेम में आत्मिक भाव है और श्रद्धा में सामाजिक भाव है।

प्रश्न 3. श्रद्धा को एक सामाजिक भाव क्यों कहा गया है ? उसके द्वारा व्यक्ति अपना तथा समाज का कल्याण किस प्रकार कर सकता है ?

उत्तर–श्रद्धा एक सामाजिक भाव है क्योंकि इससे अपनी श्रद्धा के बदले में हम श्रद्धेय से अपने हृदय की कोई बात नहीं चाहते हैं अर्थात् इसमें स्वार्थ भावना नहीं होती अपितु सामाजिक भावना प्रबल होती है। श्रद्धा धारण करते हुए हम अपने को उस समाज में समझते हैं, जिसके किसी अंश पर चाहे हम व्यष्टि रूप में उसके अन्तर्गत न भी हों, जान-बूझकर उसने शुभ प्रभाव डाला। श्रद्धा स्वयं ऐसे कार्यों के बदले में होती है जिसका शुभ प्रभाव हमारे अकेले पर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव समाज पर पड़ सकता है। श्रद्धा एक ऐसी आनन्दपूर्ण कृतज्ञता है जिसे हम केवल समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रकट करते हैं। सदाचारों पर श्रद्धा भावना और अत्याचारों पर क्रोध या घृणा भावना प्रकट करने के लिए समाज ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रखा है। इसलिए श्रद्धा का यह कार्य इतना भारी समझा गया कि उसे समाज के सम्पूर्ण मनुष्यों को बाँट दिया गया है। इसे दो-चार व्यक्ति के हाथों में नहीं छोड़ रखा है। जिस समाज में सदाचार के प्रति श्रद्धा और अत्याचार के प्रति क्रोध प्रकट करने की भावना में जितने अधिक लोग तत्पर होंगे वह समाज उतना ही जाग्रत समझा जायेगा। श्रद्धा की सामाजिक विशेषता इसी बात से समझी जा सकती है कि जिस पर हम श्रद्धा रखते हैं उस पर हम यह चाहते हैं कि और लोग भी श्रद्धा रखें। श्रद्धालु अपने भाव में संसार को भी सम्मिलित करना चाहते हैं। इसलिए जब तक समष्टि रूप में हमें संसार के लक्ष्य का बोध नहीं होता और हमारे अन्तःकरण में सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक हमें श्रद्धा का अनुभव नहीं होता है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि श्रद्धा सामाजिक भावना है, उसी के आधार पर उनके गुणों व कर्मों से मानव अपना व समाज दोनों का कल्याण कर सकता है, उसके बिना समाज का कल्याण संभव नहीं है।

प्रश्न 4. श्रद्धा कितने प्रकार की मानी गई है ? उन सबका सामान्य परिचय दीजिए।

उत्तर–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार स्थूल रूप से श्रद्धा तीन प्रकार की कही जा सकती है—

(1) प्रतिभा सम्बन्धी (2) शील सम्बन्धी (3) साधन-संपत्ति सम्बन्धी।

(1) प्रतिभा सम्बन्धी–प्रतिभा से तात्पर्य अन्तःकरण की उस उद्भाविका क्रिया से है जिसके द्वारा कला, विज्ञान आदि कई क्षेत्रों में नई-नई वार्ताएँ या कृतियाँ उपस्थित की जाती हैं। यह ग्रहण और धारणा-शक्ति से भिन्न है, जिसके द्वारा इधर-उधर से प्राप्त ज्ञान बुद्धिमत्ता से संचित किया जाता है। कला सम्बन्धी श्रद्धा के लिये श्रद्धालु में भी थोड़ी-सी मार्मिक निपुणता होनी चाहिए, इससे उसका अभाव कोई भारी त्रुटि नहीं वरन् क्षम्य है। जैसे यदि किसी उत्तम काव्य या चित्र की विशेषता न समझने के कारण हम कवि या चित्रकार पर श्रद्धा न कर सकें तो यह हमारा अनाड़ीपन है—हमारे संस्कारों में ही कुछ कमी है।

इसका उपाय यही है कि समाज कला-सम्बन्धी मर्मज्ञता के प्रचार की व्यवस्था करे जिससे विविध कलाओं के सामान्य आदर्शों की स्थापना जन-समूह में हो जाये। पर इतना होने पर भी कला सम्बन्धी रुचि की विभिन्नता थोड़ी-बहुत अवश्य होगी। अश्रद्धालु रुचि का नाम लेकर ईर्ष्या या अहंकार के दोषारोपण से बच जायेंगे।

(2) शील सम्बन्धी श्रद्धा प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। शील या धर्म के सामान्य लक्षण संसार के प्रत्येक सभ्य जन-समुदाय में प्रतिष्ठित हैं। धर्म से ही मनुष्य समाज की स्थिति है, अत: उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का रुचि-भेद, मतभेद आदि नहीं है। यदि हम सदाचारी के प्रति श्रद्धा नहीं रखते तो समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। यदि हम दूसरों के स्वार्थ-त्याग को देखकर दूसरों की प्रशंसा नहीं करते तो समाज में हमारा कोई महत्त्व नहीं है और हम समाज में किसी काम के नहीं हैं। इसलिये हमें पहले यह देखना चाहिए कि कार्य सामाजिक है या स्वार्थ-सिद्धि के लिये। यदि सामाजिक कार्य है तो उसके प्रति श्रद्धा भावना आनन्ददायक होगी।

(3) साधन-सम्पत्ति सम्बन्धी श्रद्धा में साधनसम्पन्नता का ठीक-ठीक भाव समझ लेना आवश्यक है, साधन-सम्पत्तियों का अनुपयोग, सदुपयोग, दुरुपयोग तीनों में कुछ भी हो सकता है। जैसे किसी को पद्य लिखने का अच्छा अभ्यास है। यदि शिक्षा द्वारा उसके भाव उन्नत हैं, ये सहृदय हैं, तो वह अपनी इस सम्पन्नता का उपयोग मनोहर, उच्च भावपूर्ण काव्य प्रस्तुत करने में कर सकता है। यदि ऐसी अवस्था नहीं है तो वह उच्चकोटि का काव्य न रचकर कुरुचिपूर्ण निकृष्ट काव्य की रचना करेगा। उसके इस कृत्य की श्रद्धा करने वाले बहुत मिल जायेंगे। ऐसे व्यक्ति के प्रति जो श्रद्धा होती है, वह साधनसम्पन्नता पर ही होती है।

प्रश्न 5. श्रद्धा में कितने प्रकार के मनोभावों का सम्मिश्रण होता है ? इसका मूल तत्व क्या है और क्यों ?

उत्तर–श्रद्धा में हमारे अन्तःकरण में जब तक सामान्य आदर्शों की स्थापना नहीं होती तब तक श्रद्धा का अनुभव नहीं हो सकता है। श्रद्धा में मुख्य रूप से प्रतिभा, विनयशीलता और साधन-संपत्ति आदि तत्वों का सम्मिश्रण होता है।

श्रद्धा का मूल तत्व है दूसरे का महत्त्व स्वीकार करना। अत: जिनकी स्वार्थबद्ध दृष्टि अपने से आगे नहीं जा सकती अथवा अभिमान के कारण जिन्हें अपनी बड़ाई के अनुभव की लत लग गयी है, उनको इतनी तसल्ली नहीं कि वे श्रद्धा जैसे पवित्र भाव को धारण करें। स्वार्थियों और अभिमानियों के हृदय में श्रद्धा नहीं टिक सकती। उनका अन्त: करण इतना संकुचित और मलिन होता है कि वे दूसरों की कृति का यथार्थ मूल्य नहीं परख सकते। किसी सज्जन को दस-पाँच व्यक्तियों पर एक साथ हम उपकार करते देखें जिन्हें हम जानते तक नहीं और इस प्रकार हमारी दृष्टि विशेष से सामान्य की ओर हो जाये तब यदि हमारे चित्त में उसके प्रति पहले से कहीं अधिक कृतज्ञता या पूज्य बुद्धि का उदय हो तो हम श्रद्धालु की उच्च पदवी के अधिकारी हो सकते हैं। सामान्य रूप से हम किसी के गुण या शक्ति का विचार सारे संसार से संबद्ध करके करते हैं, अपने से या किसी विशेष प्रणाली से संबद्ध करके नहीं। हम देखते हैं कि किसी मनुष्य में कोई गुण या शक्ति है जिसका प्रयोग वह चाहे जहाँ और चाहे जिसके प्रति कर सकता है।

प्रश्न 6. 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण ।' लेखक के इस कथन का सप्रमाण विवेचन कीजिये ।

उत्तर–हमारे अंत:करण के प्रिय के आदर्श रूप का संघटन उसके शरीर या व्यक्ति मात्र के आशय से हो सकता है लेकिन श्रद्धेय के रूप में संघटन उसके फैलाये कर्म तंतु के उत्पादन से होता है । प्रिय का चिन्तन हम आँख मूँदे हुए संसार को भुलाकर करते हैं, पर श्रद्धेय का चिन्तन हम आँख खोले हुए संसार का कुछ अंश सामने रखकर करते हैं । इसीलिए कहा जा सकता है कि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम का विषय एकान्त होता है इसलिये प्रेम से प्रेमी सोते, उठते, बैठते, जागते, खाते वक्त उसी के ध्यान में मग्न होता है । प्रतिपल अपने प्यार की ही प्रतिमूर्ति बनती रहती है । इसीलिए प्रेम को स्वप्न कहा गया है । किन्तु श्रद्धा में किसी के कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है । उसके कर्मों को देखने पर ही श्रद्धा के भाव उत्पन्न होते हैं तो समाज में जागृति आती है, इसलिये कहा जा सकता है कि श्रद्धा जागरण है । प्रेम में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु श्रद्धा में मध्यस्थ आवश्यक है, जो जागृत अवस्था में ही देखा जा सकता है । जैसे कि प्रेमी के रूप सौन्दर्य को आँखें मूँदकर भी महसूस करके अन्त:करण को सन्तुष्ट किया जा सकता है किन्तु श्रद्धा के लिये कवि या चित्रकार का काव्य या चित्र होगा तो भाव उत्पन्न होंगे और श्रद्धा उत्पन्न होगी । इसी कारण प्रेम को स्वप्न और श्रद्धा को जागरण कहा जाता है ।

प्रश्न 7. आशय स्पष्ट कीजिए—

(अ) श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है ।

उत्तर–जब हमें यह निश्चय हो जाये कि निम्न मनुष्य को बहुत बड़ा वीर, सज्जन, गुणवान, दानवीर, महापण्डित, परोपकारी, धर्मात्मा व महात्मा आदि है तो उसके गुणों एवं कर्मों को देखकर हमारी आत्मा में आनन्दानुभूति उत्पन्न होगी । हम उसके कर्मों की प्रशंसा करने लगेंगे, उसके सामने आने पर नतमस्तक हो जायेंगे । बिना किसी स्वार्थ के उसका भला चाहेंगे, उसकी कोई निन्दा करे तो उसे सहन नहीं करेंगे, उसकी पूजा करने के लिये लालायित होंगे । इसी कारण कहा जा सकता है कि श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है ।

(आ) श्रद्धा का व्यापार स्थल विस्तृत है, प्रेम का एकान्त ।

उत्तर–श्रद्धा और प्रेम में अन्तर स्पष्ट करते हुए शुक्लजी कहते हैं कि प्रेम प्रिय के स्वाधीन कार्यों पर उतना निर्भर नहीं, कभी-कभी किसी का रूप सौन्दर्य मात्र, जिसमें उसका कोई हक नहीं उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है, पर श्रद्धा ऐसी नहीं है । किसी की सुन्दर आँख या नाक देखकर उसके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होगी, प्रीति उत्पन्न हो सकती है । प्रेम के लिये इतना ही काफी है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिये यह आवश्यक है कि कोई मनुष्य किसी बात में बढ़ा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो । इसीलिए कहा जा सकता है कि श्रद्धा का व्यापार स्थल विस्तृत है, प्रेम का एकांत क्योंकि प्रेम में घनत्व अधिक होता है और श्रद्धा में विस्तार । इसका कारण यह है कि किसी मनुष्य से प्रेम रखने वाले एक या दो ही मिलेंगे, जो हृदय की गहराई से प्रेम करते हैं, किन्तु उस पर श्रद्धा रखने वाले सैकड़ों, हजारों, लाखों क्या करोड़ों

मिल सकते हैं क्योंकि वे उनके गुणों व कर्मों के प्रशंसक होते हैं । सच बात कहें तो श्रद्धा के आश्रय से उन कर्मों के महत्त्व का भाव दृढ़ होता रहता है, जिन्हें हम धर्म कहते हैं जिससे मनुष्य समाज की स्थिति है । श्रद्धा में सामाजिक भावना प्रबल होती है इसीलिये इसका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक होता है और प्रेम व्यक्ति किसी दूसरे के सामने प्रकट नहीं करता इसलिए उसका स्थान एकान्त व संकुचित होता है । प्रेम दो व्यक्तियों को ही प्रभावित करता है किन्तु श्रद्धा अनेक व्यक्तियों को प्रभावित करती है । इसलिये इसका क्षेत्र व्यापक रूप से फैला हुआ है किन्तु प्रेम में व्यक्ति एक-दूसरे के प्रेम को एक-दूसरे के सामने सार्वजनिक नहीं करता है, इसलिये वह एकान्त है ।

(इ) प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है ।

उत्तर–प्रेमी प्रिय को अपने लिए और अपने को प्रिय के लिये संसार से अलग करना चाहता है क्योंकि प्रेम में केवल दो पक्ष ही होते हैं—प्रेमी और प्रेमिका किन्तु श्रद्धा में तीन पक्ष होते हैं इसीलिए यही कहा जा सकता है कि प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता किन्तु श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है । जैसे कि प्रेम और प्रिय के बीच कोई वस्तु अनिवार्य नहीं किन्तु श्रद्धालु और श्रद्धेय के बीच में कोई वस्तु होनी चाहिए । यदि हमें इसी बात का स्मरण है तो प्रेम व श्रद्धा को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि आनन्द के अन्तर्गत भाव प्रेम के हैं या श्रद्धा के । जैसे यदि किसी कवि का काव्य बहुत अच्छा लगा, किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र बहुत सुन्दर लगा तो उस कवि या चित्रकार के प्रति जो भावना उत्पन्न हुई उसे श्रद्धा कहा जाता है, उस श्रद्धा के भाव में काव्य या चित्र मध्यस्थ के रूप में ही है । इसलिये यही कहा जा सकता है कि प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं होता किन्तु श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है । इसीलिये यही कहा जा सकता है कि प्रेम में दो पक्ष ही होते हैं तीसरा पक्ष आने पर उसे प्रेम नहीं कहा जा सकता है किन्तु श्रद्धा में तीन पक्ष होना आवश्यक है । बिना मध्यस्थ अर्थात् कर्म या वस्तु के श्रद्धा संभव नहीं है ।

(ई) रूप की भावना का बहुत कुछ सम्बन्ध व्यक्तिगत रुचि से होता है ।

उत्तर–किसी के रूप को स्वयं देखकर हम तुरन्त मोहित होकर उससे प्रेम कर सकते हैं, पर उसके रूप की प्रशंसा किसी दूसरे से सुनकर झट हमारा प्रेम नहीं उमड़ पड़ेगा । कुछ काल तक हमारा भाव लोभ के रूप में रहेगा, बाद में वह प्रेम में परिणत हो सकता है, बात यह है कि प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर करता है । रूप की भावना का बहुत कुछ सम्बन्ध व्यक्तिगत रुचि से होता है अतः किसी के रूप और हमारे बीच यदि तीसरा व्यक्ति आया तो इस व्यापार में सामाजिकता आ गयी, क्योंकि हमें उस समय पर ध्यान हुआ कि उस रूप से एक तीसरे व्यक्ति को आनन्द या सुख मिला और हमें भी मिल जायेगा । जब तक हम किसी के रूप का बखान सुनकर 'वाह-वाह' करते जायेंगे तब तक हम एक प्रकार के लोभी या रीझने वाले या कद्रदान ही कहलायेंगे और उसके दर्शनों के लिये आकुल होंगे, उसे बराबर सामने ही रखना चाहेंगे तब प्रेम का ही सूत्रपात समझा जायेगा । प्रेमी प्रिय के हृदय पर अपना अधिकार चाहता है ।

प्रश्न 8. पठित निबन्ध के आधार पर लेखक की भाषा-शैली की विवेचना कीजिये ।

उत्तर–हिन्दी निबन्ध साहित्य में आचार्य रामचंन्द्र शुक्ल का नाम सम्मान के साथ में लिया जाता है । जिन निबन्धों की रचना शुक्लजी ने की है, उनके विषय मूल रूप से साहित्य समीक्षा के साथ में जुड़े हुये हैं जिनमें सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक समीक्षा के मिले-जुले पक्ष सम्मिलित हैं जिन्हें विचारात्मक तथा भावात्मक कोटि के अन्तर्गत रखा जा सकता है । भाव तथा मनोविकारों पर शुक्लजी ने उत्साह, क्रोध, भय, श्रद्धाभक्ति, ग्लानि इत्यादि विषयों पर निबन्ध रचना की है ।

श्रद्धाभक्ति शुक्लजी का एक विचारप्रधान निबन्ध है जिसमें शुक्लजी ने श्रद्धा को 'महत्त्व की आनन्दपूर्ण अभिव्यक्ति स्वीकृत' कहकर उसे सामाजिकता के साथ में जोड़ा है तथा प्रेम से इसकी पृथक्ता की है । निबन्धकार ने श्रद्धा के साथ-साथ प्रेम के महत्त्व को भी स्वीकार किया है । प्रस्तुत निबन्ध की भाषा संस्कृतनिष्ठ है फिर भी भाषा विचारों तथा भावों के अनुकूल बन पड़ी है । निबन्धकार ने कहीं-कहीं पर सामासिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है । उदाहरण के लिये—

'श्रद्धा धारण करते हुये हम अपने को उस समाज में समझते हैं, जिसके किसी अंश पर—चाहे हम व्यष्टि रूप में उसके अन्तर्गत न भी हों—जान-बूझकर उसने कोई शुभ प्रभाव नहीं डाला ।'

कहीं-कहीं पर भाषा साहित्य तथा अलंकार प्रधान हो गई है—जैसे—

यदि उसकी अवस्था ऐसी नहीं है, तो वह या तो साधारण, भावशून्य गद्य को गीतिका, शिखरिणी आदि नाना छन्दों में परिणत करेगा या भद्दी और कुरुचिपूर्ण भावनाओं को छन्दोबद्ध कर देगा ।

शुक्लजी की भाषा में क्लिष्टता भले ही हो परन्तु उसमें मौलिकता भी है जो कि पाठक के हृदय को झकझोर देती है । निबन्ध में सामासिकता की भावना की प्रबलता है ।

---

2. हिमालय

(हजारी प्रसाद द्विवेदी)

लेखक-परिचय–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी का जन्म बलिया (उत्तर प्रदेश) जिले के दुबेछपरा नामक गाँव में सन् 1907 ई. में हुआ । सन् 1930 में इन्होंने काशी विश्वविद्यालय से इंटर तथा आचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं । इसके बाद शांति निकेतन में बीस वर्ष तक अध्यापन कार्य किया । इसके बाद हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राचार्य के पद पर नियुक्त हुए । 1960 से 1967 तक पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य पद पर रहे । भारत सरकार ने इनको ''पद्मभूषण'' की उपाधि से अलंकृत किया ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उत्तरवर्ती समीक्षक और निबन्धकार के रूप में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अग्रगण्य माने जाते हैं । साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने अनेक प्रकार के सांस्कृतिक एवं सामाजिक निबन्ध लिखे जिनमें उनका जीवन-दर्शन और नैतिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में साहित्य के प्रति उनको प्रेरणा

मिली । इसलिए उन्होंने "बालभट्ट की आत्मकथा" और 'पुनर्नवा' जैसी कृतियों के माध्यम से उपन्यास कला का परिचय दिया । उनकी कृतियाँ निम्न हैं—

निबन्ध-संग्रह–अशोक के फूल, विचार और विमर्श, कुटज और आलोक पर्व आदि ।

उपन्यास–चारु चंद्रलेख, ब़ाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा तथा अनामदास का पोथा ।

आलोचना-ग्रन्थ–सूरसाहित्य, हिन्दी साहित्य की भूमिका, कबीर तथा पृथ्वीराज रासो का सम्पादन आदि ।

पाठ-परिचय–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक विवरण प्रधान विचारात्मक निबन्ध "हिमालय" है । इस निबन्ध में द्विवेदीजी ने हिमालय के प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक सौन्दर्य का विवरण प्रस्तुत किया है । भारतीय साहित्य परम्पराओं में हिमालय को देवतात्मा कहा जाता है । हमारी मान्यता यही है कि हिमालय पर देवताओं का निवास स्थान है । हिमालय पर्वत स्वर्ग तुल्य है और स्वर्गारोहण भी इसी से होता है । जैसा कि पाण्डवों ने स्वर्ग प्राप्ति के लिये यहीं से प्रयाण किया । यदि हिमालय नहीं होता है तो हमें सब कुछ खोना पड़ेगा । हिमालय का प्रतीक पार्वती है जो हिमालय की दुहिता है और नारी आदर्श का प्रमाण है । बड़े-बड़े देवी-देवताओं, यक्ष-किन्नरों, ऋषि-मुनियों ने इसी पर तपस्या की है और मोक्ष प्राप्ति के साधनों को प्रबल किया है । प्राकृतिक सौन्दर्य इतना श्रेष्ठ है कि यहाँ हमें प्रत्येक प्रकार की औषधियाँ व पेड़-पौधे प्राप्त हो जाते हैं । ऐसा कोई तत्व नहीं है जो हमें प्राप्त नहीं होता है । यह हिमालय देवताओं व ऋषि-मुनियों की क्रीड़ा-स्थली रहा है व तपस्थली रहा है । हिमालय की कृपा से ही हमें सबकुछ प्राप्त हुआ है । इसके अभाव में साहित्य नीरस हो जायेगा, शिल्प वीरान हो जायेगा, ललित कलायें विकलांग बन जायेंगी ।

कालिदास ने कहा है कि हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड के समान स्थित है । हिमालय से ही संस्कृति की प्रतीक गंगा-यमुना-सरयू-सरस्वती नदियाँ प्रवाहित होती हैं । इसीलिए इसके चरणों में रत्नाकर है । प्राचीन साहित्यकारों ने हिमालय को भारत माता का मस्तक कहा है जो इसका गौरव है । हिमालय हमारी शत्रुओं से रक्षा करता है । वह हमारी प्रेरणा का स्रोत है । यह हिमालय की देन है कि हमारा देश संसार के अन्य देशों की तुलना में शील और आचार के मामले में विशिष्ट हो गया है और उसी के समान दृढ़-निश्चयी हो गया । यहाँ मनुष्य के जन्म और कर्म की, पुनर्जन्म और कर्मफल की महिमा स्वीकृत है । जो जैसा कर्म करता है उसका फल उसे भोगना पड़ता है । इस कठिन नियम से देवता भी परित्राण प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

हिमालय भारतीय साहित्य के उस महान् संदेश की प्रेरणा भूमि है जो भोग नहीं, त्याग को महत्त्व देता है, जड़ शरीर विकारों को नहीं, अन्तरतर की ऊर्ध्वमुखी शुभ भावना को प्रतिष्ठित करता है, यहाँ पर ऋषियों ने, मुनियों ने, महात्माओं ने, विद्वानों ने साहित्य, शिल्प, नृत्य-गीत, नाटक-अभिनय आदि को प्रेरित, चालित और आंदोलित किया है । हिमालय केवल पृथ्वी का मानदण्ड ही नहीं अपितु हमारी अनादिकाल से चली आती हुई सांस्कृतिक परम्परा की उत्सव भूमि है । भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ है, महान् है, गौरवास्पद है, उसका आश्रय है । हिमालयहीन भारतवर्ष उसी प्रकार हो जायेगा जैसे

मस्तिष्कहीन मनुष्य। हिमालय हमारा अविच्छेद अंग है, ऐसा अंग जो हमारी समस्त सत्ता का भंडार संचित रखे हुए है। इसीलिए कहा जा सकता है कि हिमालय है, सदा रहेगा, हमारा रहेगा, वह इसलिए है कि वह हमारी व देवताओं की संस्कृति की धरोहर है।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही स्थान पर (√) का निशान लगाइए—

1. हिमालय को कालिदास ने क्या माना है ?

(क) देवतात्मा (ख) पाषाणपुंज

(ग) जड़ पदार्थ (घ) देशनायक

उत्तर–(क) देवतात्मा।

2. पार्वती के लिए कौनसा विशेषण सबसे अधिक उचित है ?

(क) आदर्श नारी (ख) मूर्तिमयी तपस्या

(ग) सत्य की जननी (घ) पापघातिनी

(ङ) चामुण्डा।

उत्तर–(क) आदर्श नारी।

3. सही नाम लिखकर उत्तर दीजिए—

(क) देवताओं की चार जातियाँ—

उत्तर–देवताओं की जातियाँ निम्न हैं—गंधर्व, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर आदि।

(ख) तीन अप्सराओं के नाम—

उत्तर–अप्सराएँ निम्न हैं—उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा, घृताची आदि।

(ग) सौंदर्य प्रसाधन की चार प्राचीन वस्तुएँ—

उत्तर–प्राचीन युग में सौन्दर्य प्रसाधन की निम्न सामग्रियाँ थीं—केशर, अगरु, कस्तूरिका, मन:शिला, कुंकुम, लोधरेणु आदि।

(घ) हिमालय क्षेत्र के चार प्रसिद्ध स्थान—

उत्तर–हिमाल क्षेत्र के प्रसिद्ध स्थान निम्न हैं—काम्यक वन, अलकापुरी, कैलाश, कामाख्या, कदलीवन आदि।

(ङ) हिमालय की चार विशेषताएँ—

उत्तर–हिमालय की विशेषताएँ निम्न हैं—1. यह देवताओं की आत्मा है। 2. इसका प्राकृतिक व सांस्कृतिक सौन्दर्य अनूठा है। 3. यहाँ पर देवता व उनकी जातियों ने कई प्रकार की क्रीडाएँ एवं तपस्याएँ की हैं। 4. इसमें से पापों को समाप्त करने वाली एवं संस्कृति की प्रतीक गंगा आदि नदियाँ निकलती हैं।

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(क) हिमालय ………… साहित्य के महान् ……. की ……. भूमि है।

उत्तर–हिमालय <u>भारतीय</u> साहित्य के महान् <u>कवि कालिदास</u> की <u>तप:भूमि</u> है।

(ख) इन केन्द्रों ने भारतीय .... शिल्प .... गीत और .... को प्रेरित और ...... किया है ।

उत्तर–इन केन्द्रों ने भारतीय साहित्य, शिल्प, गीत और नाटक को प्रेरित और आंदोलित किया है ।

(ग) हिमालयहीन .... उसी प्रकार हो .... जिस प्रकार ...... मनुष्य ।

उत्तर–हिमालयहीन भारतवर्ष उसी प्रकार हो जायेगा जिस प्रकार मस्तिष्कहीन मनुष्य ।

(घ) हिमालय की बर्फीली .... महादेव का .... अट्टहास है ।

उत्तर–हिमालय की बर्फीली चोटियाँ महादेव का पुंजीभूत अट्टहास हैं ।

5. हिमालय शीर्षक निबन्ध किस प्रकार की भाषाशैली में लिखा गया है ?

(क) व्यास शैली (ख) समास शैली

(ग) भावात्मक शैली (घ) विवेचनात्मक शैली

उत्तर–(घ) विवेचनात्मक शैली ।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. भारतीय साहित्य में हिमालय की महिमा का गुणगान क्यों किया गया है?

उत्तर–भारतीय साहित्य में हिमालय की महिमा का गुणगान इसलिए किया गया है कि हिमालय को कवि कुलगुरु कालिदास ने देवतात्मा कहा है । भारतीय साहित्य इस देवतात्मा की महिमा से मुखर है । एक बार भारतवर्ष के रसात्मक साहित्य से उन उपकरणों को हटा दीजिए जो इस देवतात्मा नगाधिराज के प्रसाद रूप में हमें प्राप्त हैं, फिर देखिए कि वह कितना अकिंचित्कर हो जाता है । हमें ऐसा करते समय हिमालय-दुहिता पार्वती को खो देना पड़ेगा जो भारतीय नारी का आदर्श है, सतीत्व की मर्यादा है, तपस्या का मूर्तिमान् विग्रह है और पतिव्रत की विजय ध्वजा । हमको गंगा को, यमुना को, सरयू को, ब्रह्मपुत्र को और न जाने कितनी नदियों को भुला देना पड़ेगा जो हमारे जीवन को सरस, पवित्र और आनन्दोल्लसित कर रही हैं । यहाँ देवजातियों ने भी निवास किया है, कवियों एवं विद्वानों ने अपने-अपने अभिप्रायों को सुलभ किया है । देवांगनाओं ने यहाँ आकर श्रृंगार किया । इसी कारण हिन्दी साहित्य में हिमालय की महिमा का गुणगान किया है । वह हम सबके प्राणों का आधार है, संस्कृति का प्रतीक चिन्ह है, प्राकृतिक सौन्दर्य का खजाना है ।

प्रश्न 2. हिमालय की वन सम्पदा देश के लिए ईश्वर का वरदान क्यों मानी जाती है ?

उत्तर–हिमालय की वन सम्पदा को देश के लिए ईश्वर का वरदान इसलिए माना जाता है कि प्राचीन काल में हिमालय पर्वत पर देव कन्याएँ एवं अप्सराओं के श्रृंगार की सामग्री होती थी और वर्तमान में प्राकृतिक सौन्दर्य अनूठा है । यहाँ केसर, अगरु, कस्तूरिका, मन:शिला, सोध्रेरेण कई प्रकार की औषधियाँ व जड़ी-बूटियाँ पाई जाती हैं । सभी प्रकार के फल-फूल, वनस्पतियाँ पायी जाती हैं । आयुर्वेद शास्त्र की समस्त औषधियों का खजाना वहाँ व्याप्त है । ये औषधियाँ व वन सम्पदा ईश्वर की ही देन हैं । इसलिए हिमालय की वन सम्पदा को ईश्वर का वरदान कहा है । यदि हिमालय की यह वन सम्पदा नहीं होती तो हमारी बीमारियों का कोई इलाज ही नहीं होता । आज जिस विज्ञान ने इन

औषधियों के द्वारा बीमारियों का इलाज किया है, यह वन सम्पदा की देन है जो ईश्वर का वरदान है।

प्रश्न 3. क्या हिमालय सचमुच पृथ्वी का मानदण्ड है ? क्यों ? सप्रमाण उत्तर दीजिए।

उत्तर–हिमालय सचमुच पृथ्वी का मानदण्ड है। पूर्व और पश्चिम महोदधि और रत्नाकर का दोनों किनारों से अवगाहन करके विराजमान है। हिमालय का यह बहुत ही उत्तम और सटीक परिचय है। भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर वह छाया हुआ है। एक ओर वह अरब समुद्र या रत्नाकर के उत्तरी तट को स्पर्श करता है और दूसरी ओर आसाम, मणिपुर और त्रिपुरा को अपनी छत्रछाया में समेटता हुआ पूर्व समुद्र या महोदधि में निमन्त्रित होता है। इस प्रकार पृथ्वी को वह दो टुकड़ों में बाँट देता है। भारतीय विचारक इसे केवल जड़धरित्री खंड का विभाजन नहीं मानते। इस विराट मानदंड ने मनुष्य के शील और आचार-विचार में भी स्पष्ट भेद कर डाला है। हिमालयरूपी मानदंड को यदि आधार मान लिया जाये तो एक त्रिकोण महादेश बनता है जिसका शीर्ष बिन्दु कुमारिका का अंतरीप है। इस त्रिकोण भूखण्ड को कुमारिका खण्ड कहते हैं।

वास्तव में हिमालय ने केवल इस देश के मैदानों को ही शस्य-श्यामल नहीं बनाया है, केवल इसकी भौतिक संपत्ति को ही रत्नों और महौषधियों से समृद्ध नहीं बनाया है बल्कि इसके अन्तर को भी प्रभावित किया है। इस नगाधिराज को पृथ्वी का मानदण्ड कहना उचित ही है। इसके आधार पर पृथ्वी का आकार व सीमा निश्चित की जाती है। उसकी जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों का आकलन किया जा सकता है।

प्रश्न 4. हिमालय को छूती हुई सीमाओं की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर–द्विवेदीजी ने हिमालय का सजीव चित्रण किया है। हिमालय के पूर्व और पश्चिम में महान् समुद्र है जिसे रत्नाकर कहा जाता है। हिमालय पर्वत भारत की उत्तरी सीमा पर विराजमान है। इसके उत्तरी किनारे को अरब सागर स्पर्श करता है तो इसके दक्षिणी किनारे पर आसाम, मणिपुर और त्रिपुरा की छत्रछाया सुशोभित होती है। इसी कारण से हिमालय को पृथ्वी के मध्य में माना है जो पृथ्वी को दो भागों में विभाजित करता है। यह भारत की भूमि का विभाजन ही नहीं करता अपितु यह मनुष्यों में विनयशीलता एवं शिष्टाचार आदि गुणों का समावेश करता है। यदि हिमालय को आधार मान लिया जाये तो एक त्रिकोण महादेश बनता है जिसके शीर्ष बिन्दु पर कुमारिका अंतरीप है। इस त्रिकोण भूखण्ड को कुमारिका खंड कहते हैं। इसी स्थान पर हिमालय की पुत्री पार्वती शिव को वर रूप में स्वीकार करने के लिए कैलाश पर तपस्या कर रही थी। उस समय सुदूर दक्षिण से अगस्त्य मुनि उनके पास पहुँचे और प्रार्थना की कि भगवती आपके पवित्र पद संचार से हिमालय की यह देवभूमि पवित्र हो गयी है। तपोनिरता पार्वती ने प्रार्थना स्वीकार की और उसी अवस्था में नीचे की भूमि में उतर आई। यहाँ पर स्त्री-पुरुषों ने तप किये और अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया है। इसलिए यह त्रिकोण भूमि आज का भारतवर्ष कुमारिका खंड कहलाया। इसलिए सिर्फ इसी पवित्र भूमि में, वर्ण व्यवस्था विशुद्ध रूप में प्राप्त होती है। इस हिमालय का पार्वती के चरणों ने स्पर्श किया है। इसीलिए यह विचारशीलता एवं आचरणयुक्त है।

प्रश्न 5. हिमालय भारतीय साहित्य के महान् संदेश की प्रेरणा भूमि क्यों माना जाता है ?

उत्तर–यहाँ पर हिमालय पर्वत पर अनेक विद्वानों, मनीषियों, ऋषि-मुनियों, महात्माओं ने तपस्या व ज्ञान साधना की है जिस कारण भारतीय साहित्य समृद्ध बना है। इसी के कारण भारतीय संस्कृति की सांस्कृतिक विशेषता सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित हुई है। भारतीय हिन्दी साहित्य की उज्ज्वलता एवं प्रेरणा संस्कृति का प्रतीक है जिसका सम्पूर्ण विश्व अनुसरण करता है। भारतीय हिन्दी साहित्य में जीवन मूल्यों व आदर्शों का विवेचन किया गया है जो अनुकरणीय है। हिमालय भारतीय साहित्य के उस महान् संदेश की प्रेरणा भूमि है जो भोग नहीं, त्याग को महत्त्व देता है। जड़ शरीर विकारों को नहीं, अन्तरतम की ऊर्ध्वमुखी शुभ भावना को प्रतिष्ठित करता है। मानस पटल पर उत्थित होने वाली चंचल तरंगमाला को नहीं, गृहाहितं गह्वरेष्ठं तत्त्व की अविचल स्थिति का गुणगान करता है। इस महिमामय जीवनदर्शन को किसी समृद्धिशाली नगर की शान-शौकत से प्रेरणा नहीं मिली है, मिली है तो हिमालय की कंदराओं और दरी-गुहाओं में तपोनिरत ऋषियों से। हिमालय में विराजमान मंदाकिनी के सीकर, निर्झरों की गोद में पले हुए आश्रम, देवदारु द्रुममंजरियों की सुरभि से सिक्त सरिताओं के तट प्रदेश और निस्तब्ध भाव से विचरण करने वाले कृष्णसार मृगों से अध्युषित तपोवन हमारी समस्त रसमय संपत्ति के प्रेरणास्रोत हैं। सहस्रों वर्षों से इन केन्द्रों ने भारतीय साहित्य, शिल्प, नृत्य, गीत, नाटक, अभिनय आदि को प्रेरित, चालित और आंदोलित किया है। इसलिए भारतीय हिन्दी साहित्य प्रेरणा स्रोत है।

प्रश्न 6. कालिदास ने हिमालय को किन-किन रूपों में वर्णित किया है ?

उत्तर–कवि कुलगुरु कालिदास ने हिमालय को "देवतात्मा" कहा है। भारतीय साहित्य देवतात्मा की महिमा से मुखर है। हिमालय से रसात्मक साहित्य प्राप्त होता है। उसी को नगाधिराज के प्रसाद रूप में माना जाता है। हिमालय की पुत्री पार्वती है जो भारतीय नारी का आदर्श है। सतीत्व की मर्यादा है। इसी हिमालय से गंगा, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र नदियाँ प्रवाहित होती हैं जो संसार के पाप समाप्त करती हैं। यहीं पर देव जातियों ने प्रशस्ति प्राप्त की है। देवांगनाओं ने, अप्सराओं ने यहीं पर शृंगार करके क्रीडास्थली बनाया है। हिमालय के बिना हमारा सांस्कृतिक, प्राकृतिक, भौगोलिक सौन्दर्य विकलांग बन जायेगा। कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मानदण्ड बताया है। सम्पूर्ण पृथ्वी का इससे आकलन किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध भी हिमालय ने ही बनाया है। हिमालय भारत माता का मस्तिष्क है। जैसे मस्तिष्क के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार हिमालय के बिना भारत का कोई महत्त्व नहीं है। इसीलिए हिमालय भारत के लिए चिरस्थायी है जो हमारी व देवताओं की संस्कृति का प्रतीक चिन्ह है।

कालिदास ने एक जगह हिमालय की बर्फीली चोटियों को आनंदमत्त महादेव का पुंजीभूत अट्टहास कहा है। आनंद-विह्वल महादेव का पुंजीभूत अट्टहास, आनंदोल्लसित मंगलमय देवता का हर्षोल्लास न हो, तो गंगा और यमुना की धारा भी नहीं होगी, भारतवर्ष का अद्वितीय शस्य-श्यामल मैदान भी नहीं होगा और देश के नर-नारियों के चित्त में उल्लसित होने वाली महिमा भी नहीं रहेगी।

प्रश्न 7. पाठ के आधार पर सिद्ध कीजिए कि हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा-शैली में विवरण को विचार-पक्ष में ढालने की अद्भुत शक्ति है।

उत्तर–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उत्तरवर्ती समीक्षक और निबन्धकार के रूप में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अग्रगण्य माने जाते हैं । साहित्य समीक्षा के अतिरिक्त उन्होंने अनेक प्रकार के सांस्कृतिक और सामाजिक निबन्ध लिखे जिनमें जीवनदर्शन और नैतिक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है ।

द्विवेदीजी हिन्दी के मूर्धन्य कोटि के सफल समीक्षक, निबन्ध लेखक, प्रभावी अध्यापक, उपन्यासकार और कुशल अन्वेषक थे । इन्होंने भारतीय साहित्य के इतिहास को भारतीय सांस्कृतिक भावधारा और परम्परा में देखा और परखा है । संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला और अंग्रेजी के अध्ययन के आधार पर इन्होंने अनेक उदाहरण देकर उसकी प्रामाणिकता सिद्ध की है । उन्होंने सौन्दर्यानुभूति को मानवीय हित के साथ जोड़कर उसका उदात्त स्वरूप विवेचित किया है ।

(क) भाव की दृष्टि से समीक्षा–'हिमालय' आचार्य द्विवेदीजी का श्रेष्ठ विचारात्मक निबन्ध है । इसमें द्विवेदीजी ने हिमालय के प्राकृतिक-सांस्कृतिक सौन्दर्य का सजीव चित्रण किया है । भारतीय संस्कृति का प्रेरणा का स्रोत बताया है । यह भारतवर्ष का मस्तिष्क एवं विश्व का हृदय है जो भारत की रक्षा में धैर्य व साहस का परिचय देता है ।

(ख) भाषा-शैली की दृष्टि से समीक्षा–आचार्य द्विवेदीजी के निबंध की भाषा परिष्कृत, तत्सम शब्दों से युक्त और प्रवाहपूर्ण है । अभिव्यक्ति को सप्रमाण बनाने के लिए बीच-बीच में बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी किया है । सूक्ति शैली, विचारात्मक शैली, उद्धरण शैली आदि के प्रयोग के कारण, भाषा-शैली में आकर्षण आ गया है । देवतात्मा, विजय ध्वजा, स्वर्ण कमलों कषाय, लोध्ररेणु, कामाख्या, आलोड़ित, निमज्जित, विंध्य-शृंखला, द्रुममंजरियों, मस्तिष्कहीन, आनंदोल्लसित आदि, तत्सम, तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

---

3. दीनों पर प्रेम

(वियोगी हरि)

लेखक-परिचय–वियोगी हरि का पूरा नाम हरिप्रसाद द्विवेदी है । उनका जन्म 1896 ई. में बुंदेलखण्ड के जनपत के छतरपुर राज्य में हुआ । बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उनका पालन-पोषण ननिहाल में हुआ । हिन्दी संस्कार की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त करने के बाद छतरपुर से हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की । प्रतिभा-सम्पन्न वियोगी हरि की रुचि बाल्यकाल से ही साहित्य और दर्शन में थी, जिसे बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन के सम्पर्क से विशेष प्रोत्साहन मिला । गाँधीजी की प्रेरणा से सन् 1920 में उन्होंने हरिजन उद्धार पर 'प्रताप' में एक लम्बी लेखमाला लिखी । उन्होंने गाँधीजी द्वारा संस्थापित 'हरिजन सेवक' के हिन्दी संस्करण का कार्य संभाला ।

पिछली अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय से वियोगी हरि साहित्य और समाज की सेवा में जुटे हुए थे । उन्होंने चालीस से अधिक ग्रन्थों की रचना की । धर्म, दर्शन,

भक्ति, अछूतोद्धार और समाज सुधार सम्बन्धी विषयों पर उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। कुछ रचनाएँ बालोपयोगी भी हैं। तरंगिणी, साहित्य विहार, आर्तनाद, प्रेमयोग, पगली भावना, प्रेमांजलि, मंदिर प्रवेश, विश्व धर्म आदि उनकी प्रसिद्ध गद्य रचनाएँ हैं।

वियोगी हरि की भाषा कभी-कभी संस्कृतनिष्ठ हो जाती है परन्तु उन्होंने शब्दाडंबर के फेर में न पड़कर प्राय: व्यावहारिक भाषा का ही प्रयोग किया है। बोलचाल के ग्रामीण शब्दों को उन्होंने सहज भाव से अपनाया है। उनके कुछ निबन्धों में गद्यकाव्य के सौन्दर्य के दर्शन भी होते हैं। इस प्रकार वर्ण्य विषय के अनुरूप हिन्दी-संस्कृत की काव्योक्तियाँ उद्धृत करके उन्होंने अपने निबन्धों को प्रभावशाली बनाया है। उनकी भाषा का प्रवाह अत्यन्त मनमोहक और रमणीय है, जो काव्य रसिकों का ध्यान स्वत: ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

पाठ-परिचय–वियोगी हरि ने कहा है कि हम नाममात्र के आस्तिक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम कहने को तो कहते हैं कि भगवान में आस्था रखते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। लेखक के मतानुसार आस्तिक उसे कहा जा सकता है जो गरीबों से प्रेम करे, उनकी सहायता करे किन्तु हम ऐसा नहीं करते, उनसे प्रेम करने की बजाय उनसे घृणा करके सहायता करने के स्थान पर उनके कार्यों को समाप्त करते हैं। इसलिये लेखक ने हमें नाममात्र का आस्तिक कहा है। उन्होंने ईश्वर को दीनबन्धु कहा है क्योंकि ईश्वर गरीबों की टूटी-फूटी झोंपड़ियों में निवास करता है। वह ऊँचे मंदिरों-मस्जिदों में निवास करने वाला नहीं है। लोग उस ईश्वर को ऊपर, मन्दिर व संगीत व भजन में देखने की कोशिश करते हैं किन्तु ईश्वर मानव की आह, गरीबों के घरों में रहता है। आधुनिक मानव के अनुसार दो प्रकार का ईश्वर है—लक्ष्मीनारायण एवं दरिद्रनारायण।

वियोगी हरि यही कहना चाहते हैं कि गरीबों को परेशान नहीं करना चाहिए क्योंकि दीन-दुर्बल का दिल दु:खाना भगवान का मन्दिर डहाना है क्योंकि दीन हृदय में ही ईश्वर का निवास होता है। गरीबों को परेशान नहीं करना चाहिए क्योंकि वे पहले से ही दु:खी होते हैं और यदि उन्हें और दु:खी किया जायेगा तो उनकी जिन्दगी मिट्टी के समान हो जायेगी। इसलिए महात्मा ईसा व सहजोबाई भी स्वर्ग प्रवेश के बारे में यही कहते हैं कि हे मनुष्य ! यदि तू सिद्ध पुरुष बनना चाहता है या स्वर्ग में प्रवेश करना चाहता है तो तेरे पास जो कुछ धन-सम्पत्ति है वह गरीबों में बाँट दे, वह तुझे स्वर्ग में सुरक्षित मिलेगी। ऐसा करने पर सूई के छेद में से ऊँट निकल जाना कहीं आसान है, उसी प्रकार सहजोबाई भी कहती हैं कि पाप के बोझ से बड़ा व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि स्वर्ग का दरवाजा तुच्छ है, जिसके पाप के बोझ से हल्का व्यक्ति जो दान-पुण्य करता है वही स्वर्ग में प्रवेश कर सकता है। इसी प्रकार सार तत्व के रूप में यही कहा जा सकता है कि मानव को दीनों से प्रेम करना चाहिए, उन पर दया करनी चाहिए, उनकी विपत्ति में उन पर सहायता करनी चाहिए। जैसे कि कबीरदासजी ने कहा है कि वही महापुरुष या देवता है, जो दूसरों के दु:खों को जानता है और दूर करता है, जो दूसरों के दु:खों को जानकर भी न उनसे प्रेम करता है और न उनकी सहायता करता है वह सबसे नीच मनुष्य होता है। इसीलिये हमें हर हाल में गरीबों से प्रेम करना चाहिए, वही भगवान से प्रेम करना कहलाता है।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. यदि हम वास्तव में आस्तिक हैं, तो हमें—
(क) दीनों को प्रेम से गले लगाना चाहिये।
(ख) मन्दिर और धर्मशालायें बनानी चाहिये।
(ग) भजन-मण्डिलयों के आयोजन करने चाहिये।
(घ) अपना मतलब गाँठना चाहिये। **उत्तर–(क)**

2. हमारे कल्पित ईश्वर का सही नाम क्या होना चाहिये—
(क) दीनबन्धु (ख) लक्ष्मीनारायण
(ग) त्रिलोकपति (घ) रसिक-बिहारी **उत्तर–(क)**

3. ईश्वर का असली निवास कहाँ है ?
(क) मन्दिर-मस्जिदों में (ख) अमीरों की बस्तियों में
(ग) दीन-दु:खियों की झोंपड़ियों में (घ) धार्मिक समारोहों में **उत्तर–(ग)**

4. दीनों को सताने का मतलब है—
(क) स्वर्गीय जीवन को नरकीय बनाना।
(ख) ईश्वर से विद्रोह करना। (ग) अपनी खिचड़ी अलग पकाना।
(घ) डण्डे के बल पर धाक जमाना। **उत्तर–(ख)**

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—
उत्तर–(क) दीनों का हृदय दीनबन्धु भगवान् का मन्दिर है।
(ख) दरिद्र सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है।
(ग) उसका उदार हृदय तो दया का आगार है।
(घ) भगवान् का हृदय प्रेमी का वास स्थान है।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. ''हम नाम के ही आस्तिक हैं।'' इस वाक्य की व्यंजना स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–लेखक ने हमें व्यंग्य के रूप में नाममात्र का आस्तिक कहा है। लेखक के मतानुसार आस्तिक उसे कहा जाता है, जो दीनों से प्रेम करे, दु:ख-दर्द में उनकी सहायता करे किन्तु हम ऐसा नहीं करते। उनसे प्रेम करने की बजाय दीन-दु:खियों से घृणा करते हैं, उनकी सहायता के स्थान पर उनके कार्यों को बिगाड़ने का प्रयत्न करते हैं। आस्तिक उसे कहा जाता है जो गरीबों से प्रेम करे, उनकी सहायता करे क्योंकि ईश्वर दीनबन्धु है, गरीबों के साथ निवास करता है। किन्तु हम नाममात्र के आस्तिक हैं, उनसे प्रेम नहीं करते, उन्हें दुत्कारते हैं, उनकी सहायता के स्थान पर उनके जीवन को और दु:खी करने के प्रयास करते रहते हैं। गरीबों की बस्ती में जाने से तो कतराते हैं, जहाँ ईश्वर का निवास स्थान है और हम संगीत व भजन में ईश्वर को तलाश करते हैं जबकि ईश्वर हमें गरीब की आह के रूप में पुकारता है, उनको हम भगा देते हैं। इसीलिये लेखक ने हमें नाम का आस्तिक कह कर व्यंग्य किया है।

प्रश्न 2. लेखक ने दीनों को प्रेमपूर्वक गले लगाने को ही ईश्वर की सच्ची भक्ति का लक्षण क्यों माना है ? उसे ध्यान में रखते हुए 'दीनबन्धु' शब्द की व्याख्या कीजिये ।

उत्तर–वियोगी हरि यही कहना चाहते हैं कि जो व्यक्ति गरीबों को अपने गले से लगाता है वही सच्ची ईश्वर भक्ति है क्योंकि ईश्वर को दीनबन्धु कहा जाता है । वह गरीबों का भाई है । उनके हृदय में व उनकी टूटी-फूटी झोंपड़ियों में वह निवास करता है । इसलिये हमें गरीबों को गले से लगाना भगवान के भाइयों को गले लगाना है । इससे यह सिद्ध होता है कि गरीबों से प्रेम करना भगवान से प्रेम करना है । ईश्वर दीनबन्धु है क्योंकि श्रीकृष्ण की मित्रता सुदामा नाम के गरीब ब्राह्मण से थी और जब पाण्डवों का सन्धि प्रस्ताव लेकर गये तो उन्होंने दुर्योधन का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार नहीं किया इसलिये श्रीकृष्ण को दीनबन्धु कहा जा सकता है । इसीलिये यही कहा जा सकता है कि जो व्यंक्ति गरीबो से प्रेम करता है, वह उन्हें गले लगाता है, वही व्यक्ति ईश्वर से प्रेम करता है क्योंकि ईश्वर दीनबन्धु है । इसलिये हमें गरीबों से प्रेम करना चाहिए ।

प्रश्न 3. ''आज का भगवान भी दीनों का भगवान नहीं रहा ।'' इस कथन की प्रासंगिकता समझाइए ।

उत्तर–प्राचीन युग से यह सुनते अवश्य आये हैं कि त्रिलोकेश्वर श्रीकृष्ण की मित्रता और प्रीति सुदामा नाम के एक दीन-दुर्बल ब्राह्मण से थी । यह भी सुना जाता है कि महाराज श्रीकृष्ण ने महाराज दुर्योधन का अतुल आतिथ्य अस्वीकार कर बड़े प्रेम से गरीब विदुर के यहाँ साग-भाजी का भोग लगाया था । पर ये बातें आधुनिक युग में कुछ समझ में नहीं आती हैं । रहा होगा कभी ईश्वर का दीनबन्धु नाम, पुरानी सनातनी बात है, इसे गलत कौन सिद्ध करे ? किन्तु हमारा भगवान दीनों का भगवान नहीं है । कवि व्यंग्य करते हुए आज की प्रासंगिकताओं के बारे में कहते हैं कि हरे-हरे ! वह उन घिनौनी कुटियों में रहने जायेगा ? वह रत्नजड़ित स्वर्ग सिंहासन पर विराजने वाला ईश्वर उन भूखे-कंगालों के कटे-फटे कम्बलों में बैठने जाएगा ? वह मालपुआ और मोहन-भोग का भोग लगाने वाला धनवान उन भिखारियों की रूखी-सूखी रोटी खाने जायेगा ? कभी नहीं हो सकता । हम अपने बनवाये हुए विशाल राजमंदिरों में उन दीन-दुर्बलों को आने भी न देंगे । उन पतितों और अछूतों की छाया तक हम अपने खरीदे हुए खास ईश्वर पर न पड़ने देंगे । दीन-दुर्बल भी कहीं ईश्वरभक्त होते सुने हैं । उपर्युक्त कथनों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि आज का ईश्वर गरीबों का दरिद्रनारायण नहीं है वह तो लक्ष्मीनारायण है, जो अमीरों के पास ही निवास करता है ।

प्रश्न 4. 'अब लक्ष्मीनारायण को दरिद्रनारायण बनना ही पड़ेगा ।' क्यों और किस प्रकार ? स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर–आधुनिक युग में लोगों की यही मान्यता है कि आज का ईश्वर अमीरों का ईश्वर है किन्तु किसी से इस गीत को सुनकर कि धनवान पुरुष कहता है, मैं ईश्वर को किसी बाग-बगीचे या वन में ढूँढ़ता हूँ किन्तु ईश्वर हमें गरीबों के वतन में खोजता है । ईश्वर किसी गरीब की आह बनकर पुकारता है । किन्तु आधुनिक अमीर लोग उस ईश्वर को संगीत व भजन के नये-नये गीतों में उसे प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । इसलिये ईश्वर लक्ष्मीनारायण नहीं दरिद्रनारायण है । इसी प्रकार उस सन्त महात्मा ने कहा कि ईश्वर

तुम्हारे लिए किसी गरीब के दरवाजे पर तुम्हारा इन्तजार करता है किन्तु अमीर तो उस ईश्वर का इन्तजार बहारों व चमन में करते हैं । जैसे हजरत खड़े भी होने कहाँ गये—बेबर गिरे ही हुए दीन गरीबों के बीच में, किन्तु अमीर तो ऊपर की ओर स्वर्ग को देखते हैं । आज का मानव चरणों में झुकना नहीं जानता है, वह ईश्वर को ऊपर देखना चाहता है जबकि ईश्वर तो गरीबों के बीच में निवास करता है । इसीलिए लक्ष्मीनारायण को दरिद्रनारायण बनना ही पड़ेगा ।

प्रश्न 5. दीनों के हृदय को दीनबन्धु का निवास स्थान क्यों माना गया है ?

उत्तर–ईश्वर को दीनबन्धु कहा जाता है क्योंकि ईश्वर गरीबों के हृदय में निवास करता है । वह गरीबों की टूटी-फूटी झोंपड़ी में निवास करता है । वह गरीबों के वतन में निवास करता है । वह मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे व संगीत-भजन में निवास नहीं करता है । उसका निवास तो गरीबों की बस्ती एवं उनकी आह में है इसलिये ईश्वर को ढूँढ़ना ही है तो गरीबों की बस्ती में ढूँढ़ना चाहिए । ईश्वर दीनबन्धु का निवास स्थान गरीबों के हृदय में पाया जाता है । इसलिये हमें दीन-दु:खियों से प्रेम करना चाहिए, वही व्यक्ति ईश्वर या दीनबन्धु के निवास स्थान तक पहुँच सकता है ।

प्रश्न 6. इस भावपूर्ण निबन्ध द्वारा लेखक मानव समाज को क्या संदेश देना चाहता है ?

उत्तर–वियोगी हरि भावात्मक निबन्ध के माध्यम से मानव समाज को यह सन्देश देना चाहते हैं कि हमें दीन-दु:खियों से प्रेम करना चाहिए । जो व्यक्ति इनसे प्रेम करता है, वह ईश्वर से प्रेम करता है क्योंकि ईश्वर दीनबन्धु ही है । वह गरीबों का भाई है । हमें उन्हें परेशान नहीं करना चाहिए, न उन्हें घृणा की दृष्टि से देखना चाहिए । विपत्ति में उनकी सहायता करनी चाहिए और जो व्यक्ति दीन-दुर्बल का दिल दु:खाता है वह भगवान का मंदिर ढहाता है । इसलिये हमें गरीबों से प्रेम करना चाहिए । महात्मा ईसा ने भी लोगों से कहा है कि हे मनुष्य ! यदि तू सिद्ध पुरुष बनना चाहता है या स्वर्ग में प्रवेश करना चाहता है तो तेरे पास जो धन-सम्पत्ति है उसे गरीबों व दीन-दु:खियों में बाँट दे, वह तुझे स्वर्ग में सुरक्षित मिलेगी—ऐसा करने पर सुई के छेद से ऊँट निकलना कहीं आसान है, अर्थात् स्वर्ग का द्वारा बहुत छोटा है । उसमें वही व्यक्ति प्रवेश कर सकता है, जो दूसरों को दान-पुण्य करता है । सहजोबाई ने भी यही संदेश दिया है कि पाप के बोझ से बड़ा व्यक्ति स्वर्ग के द्वार में प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि उसके दरवाजे पर ही बहुत प्रकार की यातनाएँ भुगतनी पड़ती हैं इसलिये जो दान-पुण्य करता है उसे स्वर्ग में प्रवेश मिल सकता है । कबीरदासजी के माध्यम से भी यही सन्देश दिया है कि जो व्यक्ति दूसरों के दु:खों को जानता है वह महात्मा या महापुरुष कहलाता है, वह देवता तुल्य है और जो दूसरों के दु:खों को नहीं जानता या उनका उपहास करता है वह तो सबसे नीच पुरुष कहलाता है । इसलिये हमें यही सन्देश दिया है कि किसी भी हाल में दीनों से प्रेम करना चाहिये या उनकी सेवा करनी चाहिये । उन्हीं की सेवा या प्रेम ईश्वर की सेवा या प्रेम कहलाता है ।

प्रश्न 7. भावार्थ स्पष्ट कीजिए—

(अ) दरिद्र सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है ।

उत्तर–वियोगी हरि की यह मान्यता है कि जो गरीबों की सेवा करता है वही ईश्वर की सेवा करने वाला कहलाता है, क्योंकि उनके मतानुसार आस्तिक उसे कहा जाता

है, जो दीन-दु:खियों की सेवा करे, उनकी सहायता करे । दरिद्र सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है क्योंकि ईश्वर दीनबन्धु है, गरीबों का भाई है । यदि हम गरीबों की सेवा करते हैं तो ईश्वर के भाइयों की सेवा करते हैं इसीलिये यही कहा जा सकता है कि दरिद्र सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है । यदि हमें ईश्वर की सेवा ही करनी है तो गरीबों की सेवा करनी चाहिए क्योंकि उनके हृदय में ही ईश्वर का निवास स्थान पाया जाता है ।

(आ) दीन-दु:खियों के दर्द का मर्मी ही महात्मा है ।

उत्तर–कबीरदासजी कहते हैं कि इस संसार में महापुरुष वही कहलाता है, जो दीन-दु:खियों से प्रेम करे व उनकी सहायता करे । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति के हृदय में दीन-दु:खियों के प्रति दु:ख होता है, उनके दु:ख में शामिल होता है, उनकी विपत्तिकाल में सहायता करता है, उनके जीवन को सुधारने का सतत् प्रयत्न करता है, उसे कबीरदासजी महात्मा या धर्मात्मा कहते हैं । किन्तु जो व्यक्ति उनके दु:ख-दर्द को नहीं जानता है या उनका उपहास या उनके कार्यों को बिगाड़ने का प्रयास करता है, वह विधर्मी या सबसे नीच मनुष्य कहलाता है । उसको नरक में भी कोई स्थान नहीं मिलता है । वह जीवनभर दु:खी होता रहता है । इसीलिये यही कहा जा सकता है जो व्यक्ति दीन-दु:खियों का दर्द जानकर उनकी सहायता करता है, उसे महात्मा या धर्मात्मा कहते हैं । इसीलिये हमें महात्मा बनने के लिये दीन-दु:खियों के दर्द को जानकर उनके प्रति सहायता करनी चाहिए ।

(इ) दीनबन्धु की ओर से हम दीनों का खासा शिकार खेल रहे हैं ।

उत्तर–इस कथन के माध्यम से वियोगी हरि यही कहना चाहते हैं कि हम कहने को तो नाम के आस्तिक हैं किन्तु गरीबों का अपमान करते हैं, उन्हें हीन भावना से देखते हैं, उनका शोषण करते हैं, इस कारण से दीनबन्धु का शिकार करते हैं क्योंकि ईश्वर दीनबन्धु है, गरीबों का भाई है इसलिये हमें गरीबों से प्रेम करना चाहिये किन्तु हम ऐसा कदापि नहीं करते । कहने को तो हम दीनबन्धु के भक्त बने बैठे हैं किन्तु हमारे कर्म ऐसे नहीं हैं । हम कदम-कदम पर उनसे घृणा करते हैं, उनकी हत्याएँ करते हैं, उनका शोषण करते हैं, हम गरीबों को देना ही नहीं चाहते इसलिये यही कहा जा सकता है कि हम ईश्वर की ओर से गरीबों की हत्या कर रहे हैं ।

(ई) प्रेमी का उदार हृदय तो दया का आगार होता है ।

उत्तर–जो व्यक्ति गरीबों से, दीन-दु:खियों से प्रेम करते हैं वे दीनबन्धु से प्रेम करते हैं । जो भी व्यक्ति प्रेमी होगा उसके मन में दूसरों के प्रति दया भावना होगी । बिना दया भावना के प्रेम हो ही नहीं सकता है । इसलिए हमें गरीबों व दीन-दु:खियों से प्रेम करना चाहिए । यदि हम उनसे प्रेम करेंगे तो उनके दु:ख-दर्द एवं विपत्ति में उनकी सहायता करेंगे जिससे उन गरीबों व दीन-दु:खियों का जीवन सुधर जायेगा क्योंकि वास्तव में प्रेमी व्यक्ति का जो हृदय होता है वह दया का खजाना होता है, उसमें शोषण की भावना नहीं होती है । इसीलिये लोगों को चाहिए कि वे अपने हृदय को प्रेम की भावना से युक्त रखें एवं दीन-दु:खियों के प्रति दया-भावना को अपनाने का प्रयास करें । ऐसा करने से हम भगवान के समान होंगे ।

4. भूमि को देवत्व प्रदान

(वासुदेव शरण अग्रवाल)

लेखक परिचय–डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का जन्म सन् 1904 ई. में मेरठ जनपद के एक गाँव में हुआ था । ये भारतीय संस्कृति के आख्याता एवं लोकतन्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे । एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् पाणिनी की ''अष्टाध्यायी'' की शिक्षा ग्रहण करके इन्होंने भाषा शास्त्रीय एवं लोक सांस्कृतिक साहित्य पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की । 1913-1939 तक मथुरा में पुरातत्व विभाग के संग्रहालय में अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए प्राचीन साहित्य का जीर्णोद्धार करते हुए अनेक शोधार्थियों को उत्साहित किया । लोक साहित्य, लोक संस्कृति और लोक भाषाओं पर इनका विशेष अधिकार था और इन क्षेत्रों में इन्होंने अनेक पुस्तकें और शोध-पत्र लिखे । सन् 1940 से 1945 तक वे लखनऊ के प्रांतीय संग्रहालय तथा 1946 से 1951 तक केन्द्रीय एशियाई एटिम्बिटीज म्यूजियम, नई दिल्ली में उच्चाधिकारी रहे । इसके बाद बनारस विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए सेवानिवृत्त हुए ।

अग्रवालजी को चलता-फिरता पुस्तकालय कहा जाता है क्योंकि इनका अध्ययन अत्यन्त व्यापक एवं गंभीर था । इनके निबन्धों में लोक संस्कृति के कीर्तिमान तत्व उभरकर सामने आये जिससे उनकी अनुसंधान प्रवृत्ति और चिंतन दृष्टि का पता चलता है । इनके अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं, स्मारिकाओं, शोधग्रंथों आदि में लिखे गये । इनका प्रमुख विषय प्राचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास, संस्कृत भाषा और साहित्य, मध्यकालीन साहित्य आदि हैं । इन्होंने जायसी की पद्मा का भाष्य लिखा । इनकी भाषा शैली अत्यन्त सुबोध, भावपूर्ण और विषयानुसार है जिसमें वास्तविकताओं का चित्रण किया है । इनके लेख व कृतियाँ निम्न हैं—

उरु ज्योति, पृथ्वी पुत्र, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, हर्ष चरित, कादम्बरी, मेघदूत, मार्कण्डेय पुराण, कल्पवृक्ष, मातृभूमि, भारत की मौलिक एकता और वेद्य विद्या आदि । इस प्रकार से अग्रवालजी को आधुनिक साहित्यकार माना जाता है जिन्होंने प्राचीन सन्दर्भों को जोड़ने व खोज करने का सफलतम प्रयास किया है ।

पाठ-परिचय–वासुदेव शरण अग्रवाल का यह सांस्कृतिक निबन्ध है । इसमें अग्रवालजी ने भारत माता के सांस्कृतिक वैभव का चित्रण किया है । अथर्ववेद में यह वर्णन किया गया है कि भारत की भूमि माता है और मैं इसका पुत्र हूँ । यह भारत की भूमि भारतवासियों को अपनी सुसंस्कृति से सुसंस्कृत करती है । इसी के कारण हम मनुष्य कहलाने के योग्य होते हैं । भारतीय संस्कृति विश्व में प्रसिद्ध है ।

भारतीय संस्कृति का साहित्य विशेष रूप से समृद्ध है । भारत में अनेकता होते हुए भी एकता विद्यमान है । इसका मूल कारण भारतीय संस्कृति ही है । भारत में जाति, धर्म, राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक आदि दृष्टियों से अनेकता है, फिर भी भारत माता की संस्कृति ने इसे एकता के सूत्र में जोड़े रखा । इसको एकता के सूत्र में जोड़ने का लम्बे समय से प्रयत्न किया गया है । भारतीय संस्कृति की सुन्दरता के कारण भारतीय भूमि देवताओं की भूमि कहलाती है ।

भारत में हिमालय पर्वत, गंगा-यमुना-सरस्वती नदियाँ भारतीय संस्कृति का प्रतीक हैं, जो अपने संस्कारों से हमें संस्कारित करती हैं। हिमालय का प्राकृतिक व सांस्कृतिक सौन्दर्य हमें सौन्दर्यानुभूति करवाता है जिससे हम अपनी संस्कृति से जुड़ने का प्रयत्न करते हैं और हम सब इसकी रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। गंगा-यमुना नदियाँ भी हमारी संस्कृति का ही प्रतीक हैं, जो अपने संस्कारों से हमारे पाप कर्मों को समाप्त करती हैं और हमें अच्छे संस्कारों से संस्कारित करके अच्छे कार्यों को करने के लिये प्रेरित करती हैं। इस प्रकार से यही कहा जा सकता है कि भारतीय भूमि संस्कृति की भूमि है। इसकी संस्कृति की रक्षा करना व पालन करना हमारा कर्त्तव्य व दायित्व है क्योंकि एक पुत्र का कर्त्तव्य और दायित्व होता है कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा करे। इसमें निहित बुराइयों को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम भूमि की रक्षा करेंगे या संस्कृति का पालन करेंगे तो निश्चय ही इस भूमि के पुत्र कहलायेंगे अन्यथा हम इस मातृभूमि के पुत्र कहलाने योग्य नहीं हैं। हम प्राचीन समय से इसके पुत्र हैं और पुत्र ही बने रहने का प्रयत्न करें।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. गंगा और यमुमा नाम की नदियाँ हमारे जीवन में किस प्रकार से रमी हुई हैं ?
   (क) धमनियों की तरह (ख) खाने-पीने की सामग्री की तरह
   (ग) शान-शौकत की तरह (घ) मौज-मस्ती मारने की तरह। **उत्तर–(क)**
2. हिमालय हमारे लिये क्या है ?
   (क) पत्थर-मिट्टी की ढेर (ख) लता-वनस्पति का समूह
   (ग) रत्नराशि का उद्‌भव (घ) पृथ्वी का मानदण्ड
   (ङ) देवतात्मा। **उत्तर–(ङ)**
3. भूमि को देवत्व किसने प्रदान किया ?
   (क) साहित्य-मनीषियों ने (ख) राजदरबारी कवियों ने
   (ग) भूगोल के विद्वानों ने (घ) जनपद की बोलियों ने। **उत्तर–(क)**
4. मातृभूमि के पुत्रों का क्या कर्त्तव्य है ?
   (क) शहरों का विकास करें (ख) वृक्षों को सहोदर समझें
   (ग) जंगलों में भ्रमण करें
   (घ) स्वयं को मृातभूमि का सपूत सिद्ध करें। **उत्तर–(घ)**
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–
   उत्तर–(क) हिमालय हमारे लिये देवतात्मा है।
   (ख) प्रत्येक सलिलाशय, वारिधारा, नदी, कुण्ड, पर्वत पाद के मूल में देवत्व का अधिष्ठान है।
   (ग) जनपदों की बोलियों में काव्य रस का अमृत-स्वाद मिलने लगा है।
   (घ) हमारे राष्ट्र के कल्पवृक्ष को किसी स्वर्गदूत के देवदूत ने अपने प्रसाद से छू दिया है।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. 'भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ ।' अथर्ववेद की इस युक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर–भारत माता है और हम इसके पुत्र हैं, यह एक सच्चाई हमारे अंग-अंग में समाई हुई है । नदियों की अन्तर्वेदी में पनपने वाली आदि युग के जीवन पर अब हम जितना अधिक विचार करते हैं, हमको अपने जीवन और बुद्धि की सनातन जड़ों का पृथ्वी के साथ सम्बन्ध उतना ही अधिक घनिष्ठ जान पड़ता है । ऐसा सम्बन्ध माता-पुत्र का ही है । जब तक भारतीय जाति का जीवन पृथ्वी के साथ बहुमूल है, तब तक हमारे धार्मिक पर्वों पर लाखों मनुष्य नदी और जलाशयों के अमर चिह्न का व्यक्तित्व सकुशल समझना चाहिए । पृथ्वी के एक-एक जलाशय और सरोवर को भारतीय भावना ने ठीक प्रकार से समझने का प्रयत्न किया । हमारी पृथ्वी के साथ सौहार्द्र भावना अर्थात् माता-पुत्र भावना के समान प्रेम है । उनके साथ एक सनातन सौहार्द का भाव उत्पन्न किया जो हर एक पीढ़ी के साथ नये रस से उमड़ता चला जाता है और प्रत्येक पीढ़ी दर-ब-दर इससे प्रेम करती है । न हमारे तीर्थ और जलाशय पुराने होते हैं और न हमारा उनके साथ सख्य ही कुंठित होता है । इस प्रकृति के प्रति मित्रता की भावना ही विद्यमान है । यही कहा जा सकता है कि यह जीवन की अमर बेल है, जिसकी जड़ें पाताल में हैं । यह इस भावना की निशानी है कि हम देश की विशाल प्रकृति के साथ अपना शुद्ध सम्बन्ध अभी तक बनाये हुए हैं अथवा पृथ्वी के साथ सम्बन्ध बनाये हुए हैं । प्रकृति के साथ सम्पर्क में आने की लालसा जिस हृदय से लुप्त हो जाती है, वहाँ अवश्य ही मृत्यु की छाया पड़ी हुई समझनी चाहिए । नदी के स्वच्छ जल में अपने शरीर को आप्लुत कर देने की भावना के मूल में मातृ वत्सल बालक की ही प्रवृत्ति काम करती है । कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं, यह वात्सल्यता की भावना ही विद्यमान है । इस कारण से उसी की प्रेरणा से वह अपने आपको मातृ हृदय में भरे हुए सरल प्रेम में असीम आनन्द और शान्ति के लिये छिपा देना चाहता है । भारत भूमि के लिये यही भावना प्रबल है कि यह हमारी माँ है और हम इसके पुत्र हैं । हमारा माता व पुत्र का सम्बन्ध है ।

प्रश्न 2. भारतवर्ष के लिये हिमालय की क्या देन है ? इस विषय पर एक अनुच्छेद लिखिए ।

उत्तर–हमारे भारत देश में हिमालय की अनन्त हिमराशि ने जिन जल धाराओं को जन्म दिया है उनमें उत्तर के मार्गों को सींचने वाली गंगा और यमुना नाम की नदियाँ जीवन की धमनियों की तरह हमारे ऐतिहासिक चैतन्य की साक्षी रही हैं । उस हिमालय की गोद में हमारे पूर्व पुरुषों ने सभ्यता के प्रांगण में अनेक नये खेल खेले । उनके तटों पर जीवन का जो प्रवाह प्रचलित हुआ वह आज तक हमारे भूत और भावी जीवन को अभिसिंचित कर रहा है । उत्तर दिशा में हिमालय नाम का जो पर्वत है वह देवतात्मा है, देव स्वरूप है, वह पूर्व और पश्चिम के समुद्र के बीच में पृथ्वी के मापदण्ड की तरह परिव्याप्त है । हिमालय देवता है, देवता अमर होते हैं इसलिये हिमालय भी अमर है । यही भावना उस प्रत्येक भू-खण्ड के साथ ओतप्रोत है जिसको हमारे सूतों के माहात्म्य गान ने देवत्व की पदवी प्रदान की थी । तीर्थों का माहात्म्य कल्पित करके उसको स्वर्ग और मोक्ष का धाम बताना, यह एक साहित्यिक परिपाटी का देशसम्मत अंश था । जिस काल में भूमि के

साथ हमारा सम्बन्ध स्थिर नहीं बना था, उस समय उसको आत्मीय बनाने के लिये उसके कण-कण को मानव हृदय के प्रीत-भाव से सिंचित करने के लिये जिस युक्ति का आशय यहाँ के साहित्य मनीषियों ने लिया, उस भूमि को देवत्व प्रदान करने की युक्ति का स्पष्ट प्रमाण हम इन बहुसंख्यक महात्माओं के रूप में पाते हैं। हिमालय पर्वत से हमें प्राकृतिक सौन्दर्य की प्राप्ति होती है, इससे हमें संस्कृति की प्राप्ति हुई है। कई मनीषियों एवं धर्मात्माओं ने यहाँ समाधि लगाई है और धर्म का प्रचार-प्रसार किया है। इस पर हमें कई प्रकार के तत्वों की प्राप्ति हुई है और कई प्रकार की अमृत के समान औषधियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे प्रत्येक बीमारी का इलाज किया जा सकता है। यहाँ पर कई प्रकार की धातु व रत्नों की खानें हैं। सीमा की दृष्टि से देखा जाय तो यह हमारी शत्रुओं से रक्षा करता है, अडिग रूप से हमारी रक्षा का भार उसी पर है। ऐसा कहा जाता है कि स्वर्ग का द्वार भी हिमालय पर्वत से ही प्राप्त होता है। इसलिये हिमालय पर्वत स्वर्ग तुल्य है।

प्रश्न 3. भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकास में नदियों और तीर्थ स्थानों की क्या भूमिका रही है ?

उत्तर–देव युग से यहाँ नदियों की जल धाराएँ अखण्ड प्रवाह से बह रही हैं। उसी समय से ही मनीषियों ने ध्यान की शक्ति से सारे भू-भाग को मानो देवत्व प्रदान करने के लिये नदियों के तटों और संगमों पर तीर्थों का निर्माण किया। जन-सन्निवेश के वे आदि केन्द्र तीर्थ विशेषों के रूप में हमारे सामने आज भी जीवित हैं। गंगा की अन्तर्वेदी में खड़े होकर आप-ऋषियों ने विचार किया कि किस प्रकार अपने भू-भाग के साथ अपनेपन का सम्बन्ध चिरंजीवी बनाया जा सकता है। किसी नये भू-प्रदेश को अपनाकर जातीय जीवन के साथ उनका तार पिरो देना भी एक बड़ी कला है। मनीषियों ने जो युक्ति निश्चित की वह भूमि को देवत्व प्रदान करने वाली प्रणाली है। प्रत्येक सलिलातय वारिधारा, नदी, कुण्ड, पर्वत नाद्र के मूल में देवत्व का अधिष्ठान है।

जब हमारे रथ का पहिया किसी सरोवर या नदी के तट पर रुका, श्रद्धा के भाव से उसको प्रणाम किया, उस एक प्रणाम में युग-युग की श्रद्धा का वीर्यवान् अंकुर मानो हमने उसके तट पर रोप दिया। हमने उसके साथ अपने किसी देवता का सम्बन्ध स्थापित किया, किसी ऋषि या प्रख्यात पुरुष के अवदात चरित्र की लीला-स्थली वहाँ बनायी, किसी साधन निरत तपस्वी के तप के क्षेत्र रूप में उसको देखा और उस भूबिन्दु की प्रशंसा में एक माहात्म्य रचा। उस समय पर बिन्दु ही हमारी दृष्टि में सर्वोपरि था। अतएव मातृभूमि के विशाल हृदय के केन्द्र को वहीं प्रतिष्ठित मानकर हमने उसकी स्तुति के गीत गाये। यमुना के तट की परिक्रमा की, यमुना पर्वत से जहाँ यह जलधारा प्रकट हुई है, प्रयागराज के संगम तक जो सुरम्य स्थल इसके दोनों किनारों पर विद्यमान है और जिन्हें आज हम अपनी अर्वाचीन आँख से पहचान सकते हैं, उन सबको पहले से ही हमारे भौगोलिक पण्डितों ने हमारे आत्मीय बताकर हमारे सामने रख दिया है। गंगा के तट पर कौनसा रमणीय स्थल है जो पूर्वजों की पैनी दृष्टि से बचकर रह गया हो ? कहने का तात्पर्य यह है कि इन नदियों ने भारतीय नदियों के रूप में सभ्यता व संस्कृति को दिया है जिसे हम कभी भूल नहीं सकते हैं। हमें इसकी स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।

प्रश्न 4. भारत की विधिधिता का चित्रण करते हुए बतलाइए कि उसमें एकता की प्राण चेतना किस प्रकार रमी हुई है ?

उत्तर–भारत में अनेक प्रकार से अनेकता में भी एकता निहित है । भारत में भौगोलिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से, धार्मिक दृष्टि से, एक राजनैतिक दृष्टि से अनेकता छिपी हुई है फिर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के कारण एकता निहित है । भूगोल की दृष्टि से कहीं पहाड़, कहीं नदियाँ, कहीं भू-भाग, कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि होती रहती है । किन्तु विज्ञान की खोज व भारतीय संस्कृति ने इन्हें एक कर रखा है । समाज सामाजिक दृष्टि से उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग में बँटा हुआ है, एवं वर्ण व्यवस्था के अनुसार जातिवाद की दीवार खड़ी हो गई फिर भी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता ने इसे एकता के सूत्र में जोड़ रखा है । आर्थिक दृष्टि से भी भारत में अमीरी-गरीबी की दीवार खड़ी है किन्तु भारतीय संस्कृति ने एकता के सूत्र में जोड़ रखा है । धर्म की दृष्टि से भी भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है जिसमें कई धर्मों के लोग रहते हैं । यह भारतीय संस्कृति का ही महत्त्व है कि यहाँ पर सभी धर्मों का समान रूप से पालन किया जाता है । किसी को भी एक-दूसरे के धर्म को परिवर्तन करने पर बल नहीं दिया जाता है । कोई किसी भी धर्म का पालन कर सकता है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या सिक्ख या ईसाई, भारतीय संस्कृति सभी धर्मों को समान रूप से महत्त्व देती है । आज राजनैतिक दृष्टि से भी भारतवर्ष में अनेक पार्टियाँ विद्यमान हैं, कांग्रेस, भाजपा, लोकदल, समाजवादी पार्टी आदि, फिर भी केन्द्रीय सरकार में एक ही पार्टी के नाम से शासन चलता है । इस प्रकार से आज हमारे भारतवर्ष में अनेकता में भी एकता समाहित है ।

प्राचीन युग में भी भारत में अनेकता विद्यमान थी । प्राचीन युग से ही मनीषियों एवं धर्मात्माओं ने इसको एकता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास किया है । सबसे पहले श्री रामचन्द्रजी ने रावण पर विजय प्राप्त करके एकता के सूत्र में जोड़ा, फिर युधिष्ठिर ने इसको एकता के सूत्र में जोड़ा, फिर परीक्षित ने इसे एकता के रूप में किया । मौर्यकाल में चन्द्रगुप्त ने इसके लिये प्रयत्न किया फिर अशोक महान् ने इसे एकता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास किया; किन्तु आज स्वतन्त्र भारत भारतीय सभ्यता व संस्कृति के कारण एकता के सूत्र में बँधा हुआ है ।

प्रश्न 5. किन-किन कारणों से भारत को विश्वगुरु अथवा विश्व-मुकुटमणि कहा जाता है ? सप्रमाण उत्तर दीजिए ।

उत्तर–भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति इतनी प्राचीन व अर्वाचीन है कि इस भारतीय संस्कृति को विश्व के सम्पूर्ण देशों ने स्वीकार किया है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत सबसे प्राचीन राष्ट्र है क्योंकि वेदों एवं धर्मग्रन्थों की उत्पत्ति यहाँ पर ही हुई है । उपनिषदों व धर्मग्रन्थों की रचना भी यहीं हुई है । यहाँ अनेक महात्माओं, धर्मात्माओं, महापुरुषों एवं पैगम्बरों ने जन्म लिया है । अनेक देवताओं ने भी जन्म लिया है । उन्होंने अनेक संस्कारों से संस्कारित किया है । आज जो विश्व में सभ्यता व संस्कृति का प्रचार हुआ है, वह भी भारतीयों की देन है । हिमालय पर्वत, गंगा-यमुना आदि नदियों ने अपने संस्कारों से विश्व को संस्कारित किया । भारतीयों ने ही सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में जोड़ने का सफल प्रयास किया है । जवाहरलाल नेहरू आदि ने विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये पंचशील के सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया । इन्हीं कारणों से भारत को विश्वगुरु या विश्व-मुकुटमणि कहा जाता है । आज जो विश्व विज्ञान की खोज कर रहा है या नये-नये अधिकार कर रहा है, उसके बारे में भारतीयों ने प्राचीन समय में सब कुछ

लिख दिया था । उसकी प्रमाणिकता को विज्ञान के माध्यम से प्रमाणित सिद्ध कर रहा है । भारत की सांस्कृतिक विशेषता को विश्व ने ग्रहण किया इसी कारण भारत की संस्कृति विश्व की गुरु है । भारत की भूमि ने सम्पूर्ण विश्व को देवत्व प्रदान किया है । इन्हीं कारणों से भारत को विश्वगुरु कहा जाता है या इसे विश्वमणि मुकुट कहा जाता है ।

प्रश्न 6. भारतीय संस्कृति मानवता की जननी क्यों मानी जाती है ? उसकी प्रमुख विशेषताएँ बतलाइए ।

उत्तर–भारत की भूमि विश्व में सबसे प्राचीन है । भारत की भूमि को देवों की भूमि कहा है । भारतीय सभ्यता व संस्कृति विश्व में सर्वप्रथम और सबसे प्राचीन है । विश्व में जो सभ्यता व संस्कृति फैल रही है, वह भारत की ही देन है । आज जो विश्व में अच्छे संस्कार दिखाई देते हैं वे भारत को ही देन हैं । इसलिये भारत की भूमि विश्व में सबसे प्राचीन है । सृष्टि के इतिहास व वेदों में बताया गया है कि यहाँ पर ही सम्पूर्ण देवताओं ने जन्म लिया है । देव सृष्टि का विकास या सृष्टि का प्रसार भी यहाँ से ही हुआ है । इसी कारण इसे देवों की भूमि कहा जाता है । प्रकृति सौन्दर्य, सृष्टि सौन्दर्य जितना भारत में है, उतना विश्व में कहीं नहीं है । भारत की ही देन सभ्यता व संस्कृति है । भारतीय मनीषियों एवं विद्वानों ने विश्व की संस्कृति की रक्षा की है एवं भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास करती है । भारत ने विश्व में एकता, समानता, आपसी सहयोग का पाठ पढ़ाया । विश्व में जो द्वेष-भावना बढ़ती जा रही है उसमें भारत शान्ति स्थापित करना चाहता है ।

प्रश्न 7. प्राचीन भारत की भव्यता की तुलना आज के भारत की गतिविधियों के साथ कीजिए ।

उत्तर–प्राचीन भारत का सौन्दर्य विश्वविख्यात था । प्राचीन काल में प्रकृति सौन्दर्य व देव सृष्टि हिमालय था जहाँ अनेक देवता निवास करते हैं । देवलोक से विख्यात या फिर देवताओं की आत्मा कहलाया, जो आज हमारी शत्रुओं से रक्षा करता है एवं प्राकृतिक सौन्दर्य में विश्वविख्यात है । वहाँ कई प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, जिसमें अमृत के समान औषधियाँ प्राप्त होती हैं और अन्य छः पर्वत थे । वे आज भी भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं, जो भारत की कई प्रकार से सहायता करते हैं । गंगा, यमुना एवं सरस्वती नामक नदियाँ हैं, जो देव नदियाँ कहलाती हैं, जिनके किनारों पर बैठ कर कई देवताओं व महापुरुषों व मनीषियों ने तपस्याएँ की हैं एवं वे आज भी प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं । वे आज भी कई प्रकार के प्रतीक के रूप में हैं, जो भारतवासियों के पापों को धोती हैं । भारतवासी इनके तटों पर जाकर अपने पाप कर्मों को धोते हैं और पुण्य कर्मों को प्राप्त करते हैं । हिमालय पर्वत आज के युग में हमारे पिता तुल्य है और नदियाँ हमारी माता तुल्य हैं । ये दोनों हमारा पालन-पोषण करते हैं । इनसे हमें सभ्यता व संस्कृति प्राप्त हुई है, जिससे हम अच्छे संस्कारों से संस्कारित हुए हैं । वहीं सभ्यता व संस्कृति का विश्व में प्रचार-प्रसार हुआ है । इस भारतीय भव्यता का न तो हम निरादर कर सकते हैं, न इसके प्रति हीन भावना हम अपने मन में ला सकते हैं अपितु इसकी सौन्दर्यता पूजनीय है । भारतवासियों का कर्त्तव्य व दायित्व है कि इस भव्यता को बनाये रखें एवं अपवित्र होने से बचायें । भारत की भूमि हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं । यही भावना मन में रखें ।

प्रश्न 8. मातृभूमि के प्रति हमारे कौन-कौनसे कर्त्तव्य हैं और उन्हें किस प्रकार चरितार्थ किया जा सकता है ?

उत्तर–भारत की भूमि हमारी माता है एवं हम इसके पुत्र हैं। इससे मातृभूमि का भाव हमारे मन में रहना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य व दायित्व यह होना चाहिए कि इसके सांस्कृतिक व प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये रखें। हमारे यहाँ अनेक धर्मात्माओं-महात्माओं ने जन्म लिया। उन्होंने जिन धर्मों का पालन किया है, उन्हीं के मार्गों का अनुसरण करते हुए अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। वर्तमान परिवेश में पाश्चात्य संस्कृति के कारण जो भारतीय संस्कृति का परिहास हुआ है उस पाश्चात्य संस्कृति को छोड़कर भारतीय संस्कृति को प्रबल करना चाहिए। इसमें जो कमियाँ आई हैं उन्हें दूर करना चाहिए। भारतीय ऋषियों-मुनियों ने जो एकता, समानता व आपसी सहयोग का पाठ पढ़ाया है, उसका पालन करना चाहिए। उसी का अनुसरण करते हुए सम्पूर्ण विश्व को एकता के सूत्र में जोड़ते हुए विश्व में जो अशान्ति फैली हुई है, उसमें शान्ति स्थापित करनी चाहिए। मानव में मानवता व भारतीयता के गुणों का समावेश हो। जैसे भारतीय मनीषियों ने विश्व परम्परा का निर्वाह किया है, उनके पद-चिह्नों पर चलते हुए भारत माता का निर्वाह करना चाहिए। भारत के सांस्कृतिक व प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप में हिमालय, गंगा, यमुना व अन्य नदियाँ व प्रतीक हैं। उनमें सांस्कृतिक सौन्दर्य की रक्षा का दायित्व व कर्त्तव्य होना चाहिए और इसके सांस्कृतिक सौन्दर्य की वृद्धि करनी चाहिए। इसकी रक्षा के लिये यदि हमें अपना बलिदान भी करना पड़े तो बलिदान कर देना चाहिए। इसमें हमें बिलकुल भी हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए। भारत हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं। माता ने हमारा पालन-पोषण सुचारु रूप से कर दिया है और हमारा दायित्व है कि हम इसकी रक्षा का भार अपने कन्धों पर लें। इसके सांस्कृतिक व प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये रखने में जितना हो सके सहयोग करने का प्रयत्न करें। यही हमारा दायित्व है और यही हमारा कर्त्तव्य है। हमारी सांस्कृतिक व प्राकृतिक सौन्दर्यता का अपमान न होने दें इसके लिये भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न 9. इस निबन्ध का शीर्षक 'भूमि को देवत्व प्रदान' क्यों रखा गया है ? युक्तियुक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर–किसी भी निबन्ध का शीर्षक उसकी विषय-वस्तु, देशकाल एवं वातावरण एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण के आधार पर रखा जाता है। इस सांस्कृतिक निबन्ध का शीर्षक भी इसकी विषय-वस्तु के आधार पर रखा गया है। इस निबन्ध में भारतीयों की भूमि देवताओं की पुण्य भूमि है। इसमें यह वर्णन किया गया है कि भारतीय सभ्यता व संस्कृति में या इसकी विशेषता में देवताओं का महत्त्व अत्यधिक है। देवताओं ने इस भारत की भूमि का अपने संस्कारों से संस्कारित किया है, इस कारण से इस भूमिका का नाम देवत्व द्वारा प्रदान है इसलिये भूमि को देवत्व प्रदान शीर्षक उपयुक्त शीर्षक है। शीर्षक की सार्थकता निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर सिद्ध कर सकते हैं—

(1) संक्षिप्त शीर्षक–किसी भी निबन्ध का संक्षिप्त होना आवश्यक निबन्ध परम्परानुसार संक्षिप्त शीर्षक वह कहलाता है जिसमें एक से पाँच शब्द तक हों। 'भूमि को देवत्व प्रदान' में तो चार शब्द ही हैं। समास कर देने पर भूमि देवत्व प्रदान में तो तीन शब्द ही हो जाते हैं। इस कारण से शीर्षक संक्षिप्त है।

(2) सार्थक शीर्षक–किसी भी निबन्ध का शीर्षक सार्थक होना आवश्यक है । यदि शीर्षक सार्थक नहीं है तो लेखक का उद्देश्य सफल नहीं होता है । ''भूमि को देवत्व प्रदान'' निबन्ध का शीर्षक भी सार्थक है क्योंकि भूमि को देवत्व प्रदान शब्द का अर्थ भारत की भूमि को देवताओं ने अपने गुणों से संस्कारित किया है । इसलिये यह देवतुल्य है । इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि भारत की भूमि देवताओं की भूमि है जिन्होंने यहाँ जन्म लेकर सभ्यता व संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया है और यहाँ की भूमि को देवत्व प्रदान किया है इसलिये शीर्षक सार्थक है ।

(3) आकर्षक शीर्षक–किसी भी निबन्ध का शीर्षक आकर्षक होना चाहिए क्योंकि जैसा शीर्षक होता है, वैसी पाठक की मन:स्थिति होती है । इसीलिए भूमि को देवत्व प्रदान शीर्षक को पढ़ते ही पाठक के मन में अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि भूमि को देवत्व क्या प्रदान, किसने कहा है, क्यों कहा है, कैसे कहा है, कब कहा है, किसलिए कहा है आदि । जैसे-जैसे निबन्ध पढ़ते हैं प्रश्नों के उत्तर मिलते जाते हैं । इसीलिये शीर्षक आकर्षक है ।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि शीर्षक उपयुक्त, सार्थक व आकर्षक है । इसका दूसरा शीर्षक नहीं हो सकता है ।

5. गुरुदेव

(हरिभाऊ उपाध्याय)

लेखक-परिचय–पं. हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म सन् 1892 ई. में उज्जैन के पास भौरासा नामक ग्राम में हुआ । इनका हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती, संस्कृत, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं पर अच्छा अधिकार था । इन्होंने आजीविका के रूप में अध्याप्रन कार्य प्रारम्भ किया । साहित्य के प्रति प्रारम्भ से ही इनकी रुचि थी जिसका वर्णन इनके साहित्य की अभिव्यक्ति में मिलता है । इसके बाद वे गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हुए और राजनीति को अपना स्थान बना लिया । ये हिन्दी साहित्य के साहित्य सेवी हैं इसलिये आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सान्निध्य में रहकर अनेक वर्षों तक 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन किया और जीवनपर्यन्त पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़े रहे । गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक होते हुए देश में खादी प्रचार, ग्रामोत्थान, जनकल्याण और शिक्षा विकास जैसे रचनात्मक कार्यों से जुड़कर गाँधीजी के सपनों को साकार सिद्ध किया । राजनीति के क्षेत्र में अजमेर संभाग का प्रतिनिधित्व किया और राजस्थान प्रदेश के मंत्री पद पर भी रहे ।

इन्होंने नवजीवन, त्यागभूमि, मानव मयुख, राजस्थान और जीवन साहित्य आदि पत्र-पत्रिकाओं का संचालन एवं सम्पादन किया । ये द्विवेदीयुगीन प्रबुद्ध निबन्धकार के रूप में प्रसिद्ध थे । इनके निबन्धों के विषय शिक्षा, संस्कृति, गाँधीवादी समाज दर्शन आदि थे जिनमें इनकी चिन्तन पद्धति और सुलझी हुई अन्तर्दृष्टि का पता चलता है । इन्होंने 'साधना के पथ पर' शीर्षक कृति में अपनी आत्मकथा लिखी है ।

पाठ-परिचय–''गुरुदेव'' हरिभाऊ उपाध्याय जीवनीपरक निबन्ध है जिसे रवीन्द्रनाथ टैगोर की जीवनी के आधार पर लिखा गया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म 7 मई मंगलवार 3 बजे कलकत्ता में हुआ। इनके पिता का नाम देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं माता का नाम शारदा देवी था जिन्होंने भारत में समाज के सांस्कृतिक एवं सामाजिक सुधार किये। वे अपने पिता की चौदहवीं सन्तान थे। इनका परिवार ब्रह्म समाज का समर्थक था।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर बचपन से ही अपने पिता के साथ रहते थे इसलिये जो भी नई-नई वस्तुएँ देखते उनके बारे में पिताजी से अनेक प्रश्न पूछते थे। इनके मन में जिज्ञासा की भावना प्रारम्भ से ही रही। अपने पिता से इन्होंने ध्यान-प्रार्थना, एकान्त प्रेम, शान्ति आदि महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं। रवीन्द्रनाथ के बाल्यकाल में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। इसलिये इनको सुख नहीं मिला। स्कूल अध्ययन के लिये भेजा गया किन्तु इनका मन नहीं लगा इसीलिये घर में ही अध्ययन की व्यवस्था की गई। 12 वर्ष की अवस्था में इन्होंने पृथ्वीराज पराजय नाटक लिखा और शेक्सपीयर के मेकबेथ का बंगला में अनुवाद किया। धीरे-धीरे कविता आदि लिखने लगे।

1877 में पहली बार इंग्लैण्ड गये, ब्राइटन विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। फिर यूनिवर्सिटी कॉलेज में प्रवेश लिया। शिक्षा से सन्तुष्टि न मिलने पर भारत लौट आये। ये बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। बौद्धिक प्रतिभा के साथ ही साथ आध्यात्मिक विचारों की एक गहरी धारा उनके भीतर प्रकाशित हो रही थी। 15 वर्ष की अवस्था से पूर्व इन्होंने अनेक लेख लिखे।

9 दिसम्बर, 1893 को मृणालिनी देवी के साथ इनका विवाह हुआ। इसके बाद वे गाँव के शान्त वातावरण में रहकर प्रकृति सौन्दर्य का आनन्द उठाने लगे और प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण करने लगे। इन्होंने भारतीयों के मन में राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय चेतना से युक्त साहित्य की रचना की। रवीन्द्रनाथ का हृदय देशप्रेम से परिपूर्ण था। ये विदेशी शोषण के विरोधी थे। भारतीय शिक्षा का विस्तार करने के लिये ''शान्ति निकेतन'' विश्वविद्यालय की स्थापना की, जो इनका स्मृति चिह्न है। असामयिक समय में इनकी पत्नी का देहान्त हो गया। फिर इनकी पुत्री व पुत्र का देहान्त हो गया। इस कारण से इनका जीवन दुःखमय हो गया। गीतांजलि नामक बंगला कविताओं का संग्रह लिखा जिसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जिससे इनको प्रसिद्धि प्राप्त हुई और विश्व में प्रसिद्ध हो गये। ग्रामीण विकास के लिये विश्व भारती नामक संस्था की स्थापना की। 1920 से 30 तक विश्व की बड़ी-बड़ी यात्राएँ पूर्ण कीं। इसी संस्था में जीवनभर स्वयं और सम्पत्ति को समर्पित किया। अंग्रेजी शासन की निन्दा की। 8 अगस्त, 1941 को पूर्णिमा के दिन इनका स्वर्गवास हो गया। उन जैसे महात्मा को खोकर विश्व मानव दरिद्र हो गया। भारतीयों ने इन्हें गुरुदेव की उपाधि से सम्मानित किया।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. रवीन्द्र और गाँधी विश्व के लिए किस प्रकार की देन हैं ?
   (क) आर्य संस्कृति की (ख) गुरुगोविन्द के रूप की
   (ग) दिलों की धड़कन की (घ) सुकुमारता और तेज की। **उत्तर–(क)**

2. गुरुदेव के परिवार पर किसका अधिक प्रभाव पड़ा ?
   (क) ब्रह्म समाज का (ख) भारतीय कांग्रेस का
   (ग) पश्चिमी सभ्यता का (घ) परम्परागत रूढ़ियों का । उत्तर–(क)
3. रवीन्द्रनाथ ने किस काव्यग्रंथ की रचना की ?
   (क) भारतभारती (ख) गीतांजलि
   (ग) कविता कौमुदी (घ) कामायनी
   (ङ) जयद्रथ-वध । उत्तर–(ख)
4. निम्नलिखित वाक्यों में सही शब्दों पर (√) का निशान लगाइये—
   (क) रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा एकमुखी/बहुमुखी थी ।
   (ख) उन्होंने अंग्रेजी शासन की निन्दा/प्रशंसा की है ।
   (ग) 'शान्ति निकेतन' गुरुदेव का अमर स्मृति चिन्ह/ग्रंथ है ।
   (घ) 'गीतांजलि' पर गुरुदेव को नोबल/ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला ।
   उत्तर–(क) बहुमुखी (ख) प्रशंसा (ग) स्मृति चिन्ह (घ) नोबल ।
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—
   उत्तर–(क) बलिदान गुरुदेव का प्रसिद्ध नाटक है ।
   (ख) 'विश्वभारती' उनकी कीर्ति का अमर स्मृति चिन्ह है ।
   (ग) श्री निकेतन संस्था में ग्राम-सुधार के कार्य किये जाते हैं ।
   (घ) गुरुदेव ने विश्व का मानव उत्थान किया ।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. लेखक ने रवीन्द्रनाथ और गाँधी को विश्व के लिये आर्य संस्कृति की दो महान् देन क्यों कहा है ?

उत्तर–उपाध्याय ने रोम्या रोलां के शब्दों का विश्लेषण करते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर व महात्मा गाँधी को आर्य संस्कृति की दो महान् देन कहा है । उन्होंने कहा कि गाँधी और रवीन्द्रनाथ एक हिमालय से निकल कर पूर्व और पशिचप में बहने वाली गंगा और सिंधु के सदृश दो धारायें हैं । हिमालय भारत को कहा है । गंगा एवं सिन्धु के समान रवीन्द्रनाथ व गाँधी को कहा है । रवीन्द्र और गाँधी, संसार को आर्य संस्कृति की दो महान् देन हैं । एक में उसके हृदय की सुकुमारता और दूसरे में उसकी आत्मा की तेजस्विता चमक रही है । दोनों इतने महान् हैं कि हमारी स्थिति कबीर की तरह हो जाती है । "गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय" दोनों ही अपने-अपने गुणों में परमात्मा व महात्मा तुल्य हैं जिन्होंने अपने संस्कारों से सम्पूर्ण भारतवर्ष को सुसंस्कारित किया । उनके द्वारा दिये गये संस्कारों से भारत देश स्वतन्त्र हुआ और देश ने विकास के मार्ग पर अपना कदम रखा । ये दोनों आर्य संस्कृति के प्रतीक चिह्न हैं । जब तक ये जीवित रहे तब तक आर्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते रहे । इनकी मृत्यु के पश्चात् भी इनके आदर्शों को समस्त देश नमन करता है । इसलिये ये दोनों आर्य संस्कृति की महान् देन हैं ।

प्रश्न 2. रवीन्द्रनाथ टैगोर को "गुरुदेव" पद से सम्मानित करने के मूल में कौन-कौन सी भावनाएँ निहित हैं ?

उत्तर–रवीन्द्रनाथ टैगोर को "गुरुदेव" पद के द्वारा सम्मानित, उनके द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में दिये योगदान के कारण किया गया है । उनकी शिक्षा पद्धति विख्यात है । इन्होंने

राष्ट्र के मन को राष्ट्रीय चेतना व देशप्रेम से परिपूर्ण किया। शिक्षा के क्षेत्र का विकास करने के लिये "शान्ति निकेतन" की स्थापना की जो इनकी स्मृति चिह्न है। "विश्व भारती" संस्था की स्थापना की जिससे ग्रामीणों को शिक्षा देकर उनका विकास किया। इन्हीं शिक्षाओं के कारण इनको गुरुदेव की उपाधि प्रदान की गई। गाँधीजी भी इनके बारे में कहते हैं कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर हिन्दुस्तान की सेवा के मार्फत सारे जगत की सेवा करना चाहते थे और सेवा करते-करते चले गये। गुरुदेव की आत्मा तो अमर है, जैसे हम सबकी है। उनकी प्रवृत्तियाँ व्यापक थीं। प्रायः सभी ऐसी पारमार्थिक थीं कि उनकी मार्फत वह अमर रहेंगे। शान्ति निकेतन, श्रीनिकेतन, विश्व भारती—ये सब एक ही कृति के नाम हैं। वे गुरुदेव के प्राण थे। उन्हीं के लिये दीनबन्धु गये व बाद में गुरुदेव। इसी कारण कहा जा सकता है कि इनका ज्ञान सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनुकरणीय था और रहेगा। इन्हीं का अनुसरण करने से शिक्षा के क्षेत्र में कभी ह्रास नहीं हो सकता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की वाणी अमर वाणी है।

प्रश्न 3. रवीन्द्रनाथ की कुल परम्परा, शिक्षा-दीक्षा और जन्मजात संस्कारों का सामान्य परिचय दीजिए।

उत्तर—टैगोर कुल केवल बड़े जमींदार के ही नहीं, किन्तु कला और साहित्य के उच्च मर्मज्ञों के रूप में भी बहुत दिनों से प्रसिद्ध रहता आ रहा है। विगत शताब्दी में जो सांस्कृतिक एवं सामाजिक सुधार हुए हैं उनसे ठाकुर कुल का गहरा सम्बन्ध रहा है। ब्रह्म समाज वर्तमान भारतीय जीवन पर अनेक प्रकार के गहरे प्रभाव डाल सका। कहा जाता है कि इसी वंश के कुछ व्यक्तियों ने मुसलमानों के साथ भोजन करके जाति के नियम को भंग किया था। इनके परिवार में आध्यात्मिक भावना की प्रबलता थी।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। वे बचपन से अपने पिता के साथ रहते थे। उनके समान उनमें स्फूर्ति थी। उसी समय जो-जो नयी-नयी चीजें देखते, उनकी खोज के लिये पिताजी से अनेक प्रश्न पूछते थे। अपने पिता से उन्होंने ध्यान-प्रार्थना, एकान्त प्रेम और शान्ति आदि बातें सीखीं। बाल्यकाल में इनकी माताजी का देहान्त हो गया। इससे इनका लालन-पालन नौकरों की देखरेख में हुआ। पढ़ने के लिये स्कूल भेजा गया किन्तु वहाँ उनका मन नहीं लगा। इसलिये घर पर ही इनको शिक्षा प्राप्त हुई। छोटी-सी अवस्था में पृथ्वीराज पराजय नाटक व मेकबेथ का बंगला में अनुवाद किया। एक वर्ष के लिये इन्होंने इंग्लैण्ड में अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। प्रकृति सौन्दर्य के प्रति इनका अत्यन्त लगाव था। इस कारण से प्रकृति सौन्दर्य का अनूठा चित्रण किया है। छोटी-सी उम्र में इन्होंने अनेक निबन्ध, कविताएँ एवं लेख लिखे।

प्रश्न 4. रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा बाल्यकाल से ही किस प्रकार विकसित होने लगी थी ? उसके कुछ उदाहरण दीजिए।

उत्तर—रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिभा बाल्यकाल से प्रकट हो रही थी। बचपन से पिताजी के समान स्फूर्ति प्राप्त हो गई। पिताजी के साथ खेलते-कूदते रहते थे। उसी समय कुछ भी नयी वस्तु देखते थे उसके बारे में खोज करने के लिये अनेक प्रश्न पूछते थे। बाल्यकाल से इनमें ध्यान, एकान्त-प्रेम, प्रार्थना और शान्ति की भावना जागृत हुई। 12 वर्ष की छोटी-सी अवस्था में इन्होंने पृथ्वीराज पराजय एवं विश्व प्रसिद्ध लेखक शेक्सपीयर की मेकबेथ का अनुवाद बंगला भाषा में किया। इतना ही नहीं 15 वर्ष की अवस्था से पूर्व तो

इन्होंने अनेक निबन्ध, कविताएँ, उपन्यास एवं नाटक लिखे । यह बचपन की प्रतिभा का ही फल है । इसी अवस्था में प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण इतना अच्छा किया जसका वर्णन अच्छे-अच्छे साहित्यकार नहीं कर सकते हैं । इनमें बौद्धिक प्रतिभा के साथ ही साथ आध्यात्मिक विचारों की एक गहरी धारा प्रकाशित हो रही थी । इन्होंने सूर्य देवता आदि प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है । छोटी-सी अवस्था में इनकी बंगला भाषा पर धाक जम गयी । इन्होंने लगभग चार वर्षों तक निरन्तर एक से एक अच्छे निबन्ध, कहानियाँ और कविताएँ ही नहीं अपितु अच्छे नाटक भी लिखे । इन्हीं कारणों से यह कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर बचपन से ही प्रतिभाशाली थे ।

प्रश्न 5. यह कहना कहाँ तक उचित है कि रवीन्द्रनाथ की कृतियों में आध्यात्मिक प्रेम और सौन्दर्य चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है ?

उत्तर–रवीन्द्रनाथ टैगोर बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली होने के साथ ही साथ आध्यात्मिक विचारों की एक गहरी धारा उनके भीतर प्रकाशित हो रही थी । उन्हें प्रकाश किस प्रकार मिला, यह निस्संदेह आश्चर्यपूर्ण है । उन्होंने स्वयं लिखा है—सूर्य देवता सामने के वृक्षों से झाँक रहे थे । मैं उनका स्वागत करने अपने तिमंजिले मकान के छज्जे पर दौड़ गया । वृक्षों पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं । इस समय एकाएक मुझे दिव्य प्रकाश मिल गया । प्रकृति की प्रत्येक वस्तु इस समय एक ही प्रतीत होती थी—सारा विश्व एक दिखायी देता था । सब चेतन जगत यह सारा जीवन—प्रकाश और प्रेम से परिपूर्ण दिखाई देने लगा । इस अपूर्व दृश्य का वर्णन मानवीय शक्ति से परे है । सूर्य की किरणें हर्ष और सौन्दर्य उत्फुल्ल प्रतीत होने लगती हैं । प्रकृति का घूँघट हट गया । दूर से दूर, इस सिरे से उस सिरे तक प्रकाश और सौन्दर्य की असीमता ही दिखायी देती थी । इससे मुझमें इतना आनन्द आ गया कि पड़ौसी मानवीय प्रेम से अभिभूत प्रतीत होने लगे । मैं सड़क के एक हीन भिखारी को भी प्रेम से देखता था और मेरा हृदय उसके प्रति सहानुभूति से भर जाता था । मैंने बच्चे को अपने साथी के गले में बाँहें डालते हुए देखा और यह दृश्य मेरे हृदय में इतना चुभा कि आँखों से आँसू निकल पड़े । इसी कारण यही कहा जा सकता है कि रवीन्द्रनाथ की कृतियों में आध्यात्मिक प्रेम और चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है ।

प्रश्न 6. रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में देशप्रेम और प्राचीन आदर्शों का नवीनीकरण किन-किन रूपों में प्रदर्शित हुआ है ?

उत्तर–रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ और हृदय देशप्रेम से परिपूर्ण था । वह विदेशी शोषण के विरोधी थे । काका कालेलकर ने उनके बारे में कहा है कि देशभक्ति उनका व्यसन नहीं, किन्तु स्वभाव था । उस समय देश में दो प्रकार के लोग थे । एक प्रकार के लोग मानते थे कि हम गिरे हुए हैं इसलिये जो कुछ हमारा है, सब कूड़ा-कर्कट है, उसे साफ करके हमें अपने राजकर्त्ताओं का अनुसरण करना चाहिए । उनकी संकीर्ण बुद्धि में यह नहीं आया कि अंधानुकरण ही मरण है । अंधानुकरण का जीवन कृत्रिम होता है । अपमानकारक होता है और अत्यन्त हास्यास्पद भी होता है । इसके विपरीत दूसरा पक्ष कहता था—अंग्रेज बुरे हैं । उनकी संस्कृति हेय है । हमारा सब कुछ बढ़िया है, हम लोग तो संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं । हमें दूसरों से क्या सीखना है ? किन्तु इन लोगों के भी ध्यान में नहीं आया कि यह वृत्ति भी उतनी ही कृत्रिम और खोखली है । रवीन्द्रनाथ इन दोनों का त्याग करने को कहते थे—तुम अपने को पहचानो । अपना जीवन

शुद्ध और समृद्ध करो । तपस्या से तुम्हारी शक्ति अपने आप बढ़ने लगेगी, फिर किसी की ताकत नहीं जो तुम्हारा अपमान करे ।

वह चाहते थे कि भारत के प्राचीन आदर्शों को फिर से जागृत और जीवित करना चाहिये । उन्होंने आर्यों की सभ्यता तथा उपनिषदों पर व्याख्यान दिये और सिक्खों, राजपूतों तथा मराठों की वीरता एवं आत्मविश्वास की भूरि-भूरि प्रशंसा की । इस काल में यह कहा जा सकता है कि गुरुदेव के साहित्य में देशप्रेम व प्राचीन आदर्शों का नवीन रूप प्रस्तुत किया है ।

इस नवीनीकरण के रूप में संस्कृत के काव्यों एवं मध्यकाल के वैष्णव साहित्य से उन्हें बहुत प्रेरणा मिली थी । ज्ञान की तो वे मानो सजीव मूर्ति थे । अपनी असाधारण प्रतिभा और भावोद्वेग से उन्होंने विश्व मानवता को अपने हृदय में धारण किया । पीड़ित मानव की वेदना को भाषा प्रदान की, उसकी आशा को उन्होंने छन्दों में रूपान्तरित किया और उसके आनन्द को संगीत की सैकड़ों धाराओं में बहाया । मानव महत्त्व के इस पुजारी ने देश-विदेशों में भ्रमण करके मानवता को दानवी-शक्ति से छुटकारा दिलाने की अमर वाणी सुनाई । इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि गुरुदेव की वाणी देश प्रेम व प्राचीन आदर्शों से परिपूर्ण है ।

प्रश्न 7. मानवीय संवेदनाओं के शब्द-शिल्पी के रूप में रवीन्द्रनाथ के कृतित्व का मूल्यांकन कीजिए ।

उत्तर–रवीन्द्रनाथ ने कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में समय-समय पर अपने साहित्य में स्वदेश प्रेम के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं को प्रकट किया । बंग-भंग के समय उन्होंने बहुत काम किया । जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड से तो वह इतने दुःखी हुए कि उन्होंने अपनी सर की उपाधि का परित्याग किया । उनके अंग्रेज मित्र इससे असन्तुष्ट होकर अलग हो गये, किन्तु उन्होंने इसकी बिल्कुल चिन्ता नहीं की । राजनीति में गाँधीजी से कुछ मतभेद होते हुये भी वह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे । यही हाल गाँधीजी का भी था । गुरुदेव की वृद्धावस्था होने पर भी समय-समय पर बर्बरता, पशुता, जुल्म और हत्याओं के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की और करारे जवाब दिये ।

ये संस्कृत साहित्य से मानवीय संवेदनाएँ ग्रहण करके भारतीय मानवों के प्रति संवेदित रचनाएँ करने लगे जिनको भारतीयों ने अमर वाणी के रूप में स्वीकार किया । इन्होंने जातिवाद के संकीर्ण बन्धनों को तोड़ दिया । मानवता को अपने हृदय में धारण किया । सरल, सरस भाषा के माध्यम से समाज में पीड़ित मनुष्यों को सन्तुष्ट किया । इसी कारण से भारतीय समाज इनको गुरु के रूप में मानता है । इन्हें ऋषि-मुनियों के समान उपाधि दी जाती, उनमें मानवीय संवेदनाएँ चित्रित की हैं ।

प्रश्न 8. रवीन्द्रनाथ को "विश्वकवि" क्यों कहा जाता है ?

उत्तर–रवीन्द्रनाथ टैगोर की बचपन से ही साहित्य के प्रति रुचि थी और साहित्य काव्य परम्परा के अनुसार छोटी-बड़ी अनेक कविताएँ प्रकाशित हुईं, काव्य में प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण किया । भारतवर्ष व विश्व में उनकी-सफलता एवं सुन्दर रचनाओं की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, इनका एक कविता संग्रह "सोनारतरी" प्रकाशित हुआ जिसमें रहस्यवादी काव्य-परम्परा का श्रेष्ठ विकास था । इसके बाद चित्रा और उर्वशी दो रचनाएँ प्रकाशित हुईं । ये साहित्यिक रचनाएँ विश्व साहित्य में सौन्दर्य पूजा की दृष्टि से

बेजोड़ हैं। इन्होंने "गीतांजलि" नामक कविता-संग्रह की बंगला भाषा में रचना की, उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, इन्हीं कविताओं के आधार पर इनको विश्व कवि के रूप में माना गया। रवीन्द्रनाथ ने अपनी वीणा के स्वरों से निराश और विक्षुब्ध जाति में नवजीवन का संचार किया। साम्प्रदायिकता के स्थान पर राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया। स्वधर्म-प्रतिष्ठा की साधना में रवीन्द्रनाथ कवि ही नहीं, पथ-प्रदर्शक भी हैं; इन्हीं कारणों से सम्पूर्ण विश्व में उनकी कीर्ति-कौमुदी फैल चुकी थी। कवि की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान की गई। अन्य कई प्रकार से देशों में उनका सम्मान हुआ। ये विश्व में विश्व कवि के रूप में विख्यात हुए।

प्रश्न 9. "शांति निकेतन" विश्व भारती और श्री निकेतन के कार्यकलापों पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा के क्षेत्र में विकास करने के लिये शांति निकेतन की स्थापना की जो इनका स्मृति-चिन्ह है। इस विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1901 में हुई। हमारे प्राचीन आदर्शों के पुजारी होने के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ पश्चिम की वर्तमान प्रगति से एकदम उदासीन नहीं थे। शान्ति निकेतन में पश्चिम की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को कुछ अंशों में ग्रहण भी किया गया। वह चाहते थे कि इस विश्वविद्यालय के द्वारा प्राचीन आदर्शों की प्राप्ति की जाय और भारतीय विद्यार्थी के मन और आत्मा का इतना विकास कर दिया जाय कि वह सौन्दर्य, प्रेम और ईश्वर की ओर उन्मुख हो सके। शान्ति निकेतन एक आदर्श संस्था समझी जाने लगी और देश ही नहीं विदेशों से भी विद्यार्थी आकर भरती होने लगे। इस प्रकार विदेशों से अध्यापक शान्ति निकेतन में आकर काम करने लगे। इनमें दीनबन्धु एंड्रुज और पीयसेन काफी प्रसिद्ध अध्यापकों में से थे। यहाँ की शिक्षा पद्धति गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के समान थी, जिसमें कठोर अनुशासन प्रणाली थी। सभी वर्गों के समान रूप से नियम लागू थे।

उन्होंने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के आदर्शों को मूर्त रूप देने के लिये "विश्व भारती" नामक एक विश्व संस्कृति की स्थापना की और ग्राम सुधार के लिये श्रीनिकेतन की स्थापना की जो कि ग्रामों के पुनर्निर्माण के लिये विश्व भारती का एक विभाग है। सन् 1920 से 30 में टैगोर ने बड़ी-बड़ी यात्राएँ कीं किन्तु उनका ध्यान सदैव विश्व भारती की उन्नति में लगा रहा। नोबल पुरस्कार से और पुस्तकों से जो कुछ उन्हें मिला वह सब उसके लिये खर्च करते रहे। शनैः-शनैः वह एक विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया और उसका नाम सचमुच ही विश्व भारती हो गया जो कि संसार भर की संस्कृति का बोधक है। यूरोप और एशिया के कतिपय बड़े-बड़े विद्वान भी यहाँ आते और यहाँ रहकर भारतीय कला, संगीत और संस्कृति का अध्ययन करते हैं। रवीन्द्र यहाँ साधारणतः एक अध्यापक और संस्थापक सभापति के रूप में रहते थे। उन्होंने सारी सम्पत्ति ही नहीं, अपना सारा जीवन इसे अर्पण कर दिया। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवनकाल में शिक्षा में मानवीय मूल्यों को प्रतिपादित करने के लिये इन तीनों– शान्ति निकेतन, विश्व भारती व श्रीनिकेतन को स्मृति-चिन्ह कहा जाता है। इन्हीं के आधार पर इन्होंने समाज को सुधारने का सफलतम प्रयास किया और मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों की इन्होंने रक्षा की और देश के सर्वांगीण विकास में सहयोग दिया।

6. जीवन और साहित्य

(डॉ. सम्पूर्णानन्द)

लेखक-परिचय–डॉ. सम्पूर्णानन्दजी का जन्म 1 जनवरी, सन् 1890 में वाराणसी काशी (उत्तर प्रदेश में) हुआ। इन्होंने बी.एस.सी. तथा विधि स्नातक की उपाधि प्राप्त करके शिक्षक का व्यवसाय प्रारम्भ किया। ये वृन्दावन, इन्दौर, बीकानेर आदि में अध्यापक रहे। काशी विद्यापीठ में भी अध्यापन कार्य किया। इनकी रुचि सामाजिक व राष्ट्रीय कार्यों में विशेष थी। इन्होंने राजनीति के क्षेत्र में भी प्रवेश प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश में शिक्षा मंत्री, गृहमंत्री के पद पर कार्य किया और राजस्थान में राज्यपाल के पद पर प्रतिस्थापित किये गये। इन्होंने संस्कृत भाषा के माध्यम से भारतीय साहित्य, संस्कृति और दर्शनशास्त्र का विस्तृत एवं गम्भीर अध्ययन किया और वे उसकी सांस्कृतिक परम्पराओं और जीवन पद्धतियों को अपने ग्रन्थों और निबन्धों में लिपिबद्ध करने के कार्य में जुट गये। महात्मा गाँधी द्वारा संचालित असहयोग आंदोलन तथा अहिंसापूर्ण स्वतन्त्रता संग्राम के कार्यक्रमों में इन्होंने सोल्लास सक्रियता दिखाई।

सम्पूर्णानन्दजी का व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए भी ये बराबर साहित्य निर्माण करते रहे। इन्होंने विज्ञान, इतिहास, पुरातत्व, राजनीति, दर्शन आदि विविध विषयों पर रचनाएँ की हैं। भौतिक शास्त्र, ज्योति-विनोद, अन्तर्राष्ट्रीय विधान, समाजवाद, आर्यों का आदिदेश, गणेश, चिद्‌विलास, दर्शन और जीवन, भाषा की शान्ति आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनकी भाषा-शैली में सहज प्रवाह और क्रमबद्धता की संगति मिलती है। शिक्षा का उद्देश्य समाज और धर्म, जीवन और साहित्य पर इन्होंने अपने अत्यन्त सुलझे हुए विचार प्रकट किये हैं। वे मूलतः कुशल राजनीतिज्ञ, मर्मज्ञ विचारक, गम्भीर दार्शनिक और विवेकशील शिक्षाविद् थे। उनके निबन्ध इनके व्यक्तित्व एवं पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन का फल ही हैं। उनका जीवन अत्यन्त सरल और उच्च आदर्शों से परिपूर्ण रहा। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में भी इनका योगदान सराहनीय है।

पाठ-परिचय–जीवन और साहित्य–डॉ. सम्पूर्णानन्दजी का साहित्य समीक्षात्मक निबन्ध है। साहित्य का सम्बन्ध व्यक्ति के राष्ट्रीय जीवन से है। क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य जीवन के लिये दो प्रकार का होता है। एक स्वांतः सुखाय दूसरा परांतः सुखाय साहित्य। इसलिये इनका साहित्य समस्त हिन्दू समाज के लिये उद्देश्यपूर्ण था। साहित्यकार पर समाज का प्रभाव तो पड़ता ही है। पहले के साहित्यकार राज्याश्रयी कहलाते थे; किन्तु आज के साहित्यकार की परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न हैं। इसलिये साहित्यकार का धर्म होता है कि वह देशकाल की परिस्थितियों का ठीक-ठीक निर्भीक चित्रण करे। यदि साहित्यकार सामाजिक क्लेशों की उपेक्षा करके मौज का राग अलापता है तो वह राष्ट्रीय जीवन से कोसों दूर है और वह राष्ट्र के प्रति, साहित्य के प्रति विश्वासघात करता है। उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार नहीं है। उसके लिये यही कहा जा सकता है कि वह आकाश कुसुम देख सकता है पर वह आँख

का अन्धा है और राष्ट्र के लिये इसका कोई उपयोग नहीं है। यदि साहित्यकार अच्छा होगा तो उस पर जगत की छाया तो अवश्य पड़ेगी। साहित्यकार केवल प्रचारक ही नहीं होता है। प्राचीन साहित्यकारों ने कहा है कि जो साहित्यकार समाज की उपादेयता को महत्त्व नहीं देता उसे सरस्वती के मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। इसलिये साहित्यकार को चाहिए कि वह समाज की वस्तु-स्थिति की सही जानकारी समाज को साहित्य के माध्यम से दे। यदि साहित्यकार राष्ट्र के लिये उपयोगी है तो उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार है अन्यथा वह साहित्यकार समाज पर भारस्वरूप ही रहेगा। इसलिये साहित्य सामाजिक प्रेरणाओं से युक्त जीवनदायी और परान्तः सुखाय होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि जीवन और साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध होते हैं जिन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सच्चा साहित्य वही कहलाता है जो जीवन और समाज के धागों में पिरोया जाकर शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति करने वाला होता है।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. साहित्य का सम्बन्ध किनसे है ?
(क) व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन से (ख) शून्य की कल्पना से
(ग) दुनियादारी के चक्कर से (घ) धन कमाने और पेट भरने से।
उत्तर–(क)

2. साहित्यकार की रचना की मूल प्रेरणा क्या होती है ?
(क) स्वांतः सुखाय भावना (ख) परिस्थितियों का आकलन
(ग) राज्याश्रित होकर जीवनयापन
(घ) केवल शब्दाडम्बर का प्रदर्शन। **उत्तर–(ख)**

3. साहित्य का प्रयोजन है—
(क) धन कमाना (ख) अपने मत का प्रचार करना
(ग) भटके हुओं को राह दिखाना
(घ) आत्मसुख के साथ-साथ लोककल्याण करना। **उत्तर–(घ)**

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—
उत्तर–(क) जीवन और साहित्य में अविच्छेद का सम्बन्ध है।
(ख) सच्चा साहित्यकार समाज में परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं करता।
(ग) लेखक पर परिस्थितियाँ अपना प्रभाव डालती हैं।
(घ) रीतिकालीन कवि राज्याश्रित होकर जीवनयापन करते थे।

5. सही शब्द पर निशान लगाइए—
(क) तुलसी की रचना स्वांतः सुखाय/उदरपूरणाय है।
(ख) साहित्य में क्रिया-प्रतिक्रिया/सौदेबाजी चलती रहती है।
(ग) साहित्यकार एक संवेदनशील/बौद्धिक प्राणी होता है।
उत्तर–(क) स्वांतः सुखाय (ख) सौदेबाजी (ग) संवेदनशील।

6. हाँ अथवा नहीं में उत्तर दीजिये—

(क) क्या सच्चा साहित्यकार जीवन से पलायन करता है ?

उत्तर—नहीं ।

(ख) क्या जगत् की परिस्थितियाँ साहित्यकार को प्रभावित करती हैं ?

उत्तर—हाँ ।

(ग) क्या स्वांत: सुखाय में परांत: सुखाय का भाव छुपा रहता है ?

उत्तर—हाँ ।

(घ) क्या साहित्य केवल मनोरंजन करने अथवा खाली वक्त काटने का ही साधन है ?

उत्तर—नहीं ।

(आ) विषयपरक प्रश्न—

प्रश्न 1. साहित्यकार को रचना करने की प्रेरणाएँ कहाँ-कहाँ से मिलती हैं ?

उत्तर—साहित्यकार को रचना करने की प्रेरणा व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन से मिलती है । साहित्यकार शून्य में रचना नहीं कर सकता है । जब तक साहित्यकार संसार की परिस्थितियों से प्रवाहित नहीं होता है वह चाहे इन परिस्थितियों से कितना भी बचने का प्रयत्न क्यों न करे फिर भी बच नहीं सकता । लेखक चाहे या न चाहे फिर भी साहित्यकार के मन में समाज, राष्ट्र व जीवन के प्रति प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य है । रीतिकालीन साहित्यकार फिर भी राजाश्रयी थे किन्तु आधुनिक साहित्यकार तो राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक परिस्थितियों से युक्त होकर परान्त: सुखाय रचनाओं का निर्माण करता है । यदि साहित्यकार समाज से प्रेरणा ग्रहण करके साहित्य की रचना नहीं करता है तो उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार नहीं है । वह नाम का साहित्यकार ही कहलाता है ।

प्रश्न 2. श्रेष्ठ कवियों के स्वांत: सुखाय भाव में विश्व जनहिताय की भावना किस प्रकार छिपी रहती है ? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।

उत्तर—रीतिकालीन एक भक्तिकालीन कवियों ने स्वान्त: सुखाय काव्य परम्परा का निर्वाह किया; क्योंकि मानव जीवन में जो क्रियाएँ हो रही हैं, साहित्यकार की यह विशेषता होती है कि उनके प्रति उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक और अनिवार्य है । इसलिए हमारे मतानुसार स्वांत: सुखाय रचना असंभव है । जैसे कि हम कहते हैं कि तुलसीदास का साहित्य स्वांत: सुखाय ही रच गया तो हमें यही सोचना चाहिए कि यह काव्य स्वात: सुखाय कैसे हो सकता है । उससे आज भी हमें उस समय से लाभ मिलता आ रहा है वह साहित्य तो परान्त: सुखाय ही है जिससे समाज सुखों का अनुभव कर रहा है और जब तक साहित्य जगत रहेगा तब तक लाभ मिलता रहेगा । इस प्रकार से यही कहा जा सकता है कि श्रेष्ठ कवियों का जो साहित्य होता है वह स्वान्त: सुखाय न होकर परान्त: सुखाय होता है जो जनहिताय ही होता है । उससे स्वार्थ सिद्ध न होकर परोपकार भावना ही प्रबल होती है । उसका ज्ञान तत्व समाज के लिये अनुकरणीय हो जाता है और समाज में शान्ति स्थापित होती है ।

प्रश्न 3. साहित्य के दर्पण में समाज का चित्र किस किस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है ? सप्रमाण उत्तर दीजिए ।

उत्तर–साहित्य समाज का दर्पण होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी साहित्यकार बिना समाज के आधार के किसी साहित्य की रचना नहीं कर सकता है । यदि साहित्यकार समाज की परिस्थितियों से हटकर साहित्य की रचना करता है तो वह साहित्य नीरस व असफल हो जाता है । जैसा समाज होगा वैसे ही साहित्य की रचना की जाती है तो वह साहित्य सफल होता है; क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है । समाज जैसा होगा वैसा ही प्रतिबिम्ब दर्पण पर बनेगा । यदि साहित्य समाज के प्रतिबिम्ब पर आधारित नहीं होता है तो निश्चय ही वह साहित्य न कहलाकर कल्पना मात्र ही कहलायेगा । हिन्दी साहित्य इस बात का प्रमाण है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब या दर्पण है । आदिकाल में समाज की परम्परा वीरतामूलक थी इसीलिये साहित्य भी समाज के अनुकूल वीरतामूलक ही लिखा गया । भक्तिकाल में समाज का अन्तिम लक्ष्य भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्ति करना था इसलिये भक्तिकालीन साहित्य भक्ति-धारा से युक्त ही है और रीतिकालीन साहित्य में राज्याश्रयिता का महत्त्व था तो साहित्य भी राज्याश्रयी महत्ता से परिपूर्ण ही लिखा गया । आधुनिक काल में समाज में देखें तो समाज में राष्ट्रीय चेतना, देशप्रेम, प्रकृति बोध, नारी चेतना, व्यंग्य बोध का युग है तो साहित्य भी आधुनिक युग में इन्हीं विशेषताओं से युक्त है । यदि ऐसा साहित्य नहीं हो तो साहित्यकार का कोई महत्त्व नहीं रहता इसलिये यही कहा जा सकता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है । उस पर समाज का प्रतिबिम्ब पड़े बिना नहीं रह सकता है । क्योंकि समाज के अनुसार साहित्य नहीं होगा तो समाज उसमें रुचि ही नहीं लेगा और साहित्य नीरस हो जायेगा । इसलिये यही कहा जा सकता है साहित्य के दर्पण में समाज का चित्र बिम्ब किया जाता है । उसके बिना साहित्यकार का साहित्य अधूरा ही रहता है । इतना ही नहीं वह रचना ही नहीं कर सकता है । इसलिये साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब मात्र ही है ।

प्रश्न 4. जीवन और साहित्य का अन्तर्सम्बन्ध निरूपित कीजिए और बताइये कि दोनों किस प्रकार परस्पर लेते-देते चलते हैं ।

उत्तर–समाज का प्रभाव साहित्यकार पर न पड़े, असंभव है, इतना हो सकता है कि साहित्यकार पलायन अवश्य कर सकता है । आँख बन्द कर सकता है जैसा दरबारी कवियों ने किया किन्तु साहित्य व जीवन का सम्बन्ध दर्पण के समान है । यदि दर्पण होगा तो उस पर जीवन का दर्शन तो होगा ही चाहे हम देखें या न देखें उसी प्रकार साहित्य होगा तो यह निश्चय है कि उस पर जीवन का सम्बन्ध होगा ही या सामाजिक जीवन प्रतिबिम्ब तो बनेगा ही चाहे साहित्यकार देखे या न देखे । साहित्यकार को अपने साहित्य में मानव-जीवन अवश्य ही जोड़ना पड़ेगा । उससे दूर हटकर साहित्य की रचना कर ही नहीं सकता है । यदि सामाजिक जीवन से साहित्यकार हट भी जाता है तो उसका साहित्य नहीं कहलाता अपितु उसे सरस्वती के मन्दिर में बैठने का भी कोई अधिकार नहीं है । इसलिये यह आवश्यक है कि साहित्यकार अपने साहित्य की रचना करने के लिये मानव जीवन व सामाजिक जीवन से सम्बन्धित हो । स्वार्थों की दृष्टि से साहित्य न होकर परान्त सुखाय ही साहित्य होना चाहिए ।

साहित्य व जीवन एक-दूसरे के प्रतिपूरक हैं । यह सम्बन्ध होना चाहिए इसलिये यह निश्चय है कि यदि साहित्य नहीं होगा तो जीवन नहीं होगा और जीवन नहीं होगा तो साहित्य नहीं होगा । इसलिये साहित्य व जीवन एक-दूसरे में समाहित हैं; क्योंकि साहित्य

के अनुसार जीवन चलता है एवं जीवन के अनुसार साहित्य लिखा जाता है । साहित्य के बिना मानव अपने जीवन की वास्तविकताओं को नहीं जान सकता है । इसीलिए यही कहा जा सकता है कि साहित्य के बिना जीवन अधूरा है और जीवन के बिना साहित्य अधूरा है । इस प्रकार से साहित्य और जीवन में पवित्रता का सम्बन्ध है । वे एक-दूसरे पर आधारित होकर चिरस्थायित्व को प्राप्त करते हैं । नहीं तो जीवन व साहित्य में स्थायित्व नहीं होगा ।

प्रश्न 5. किसी अन्धे साहित्यकार के गुणों की विशेषताएँ बताइये ।

उत्तर–डॉ. सम्पूर्णानन्दजी के मतानुसार एक अच्छा साहित्यकार वह कहलाता है जो व्यक्ति राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित हो । सामाजिक परिस्थितियों से युक्त हो, अपने साहित्य की रचना स्वान्तः सुखाय न करके परान्त सुखाय करे । साहित्य की रचना समाज के दर्पण के रूप में हो अर्थात् साहित्य परम्परा का निर्वाह समाज के बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में जो देश प्रेम व राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हो । स्वार्थ-सिद्धि की साहित्य रचना न हो । देश, समाज व मानव जीवन के लिये हानिकारक न हो । अच्छा साहित्यकार वही कहलाता है जो निडर होकर देशकाल एवं वातावरण की परिस्थितियों का सजीव चित्रण करे । वह समाज के क्लेशों से दूर रहकर मौज-मस्ती का राग न अलापे । वह तो साहित्य के प्रति विश्वासघात ही होगा । क्योंकि सच्चा साहित्यकार वही होगा जिस पर संसार की छाया तो अवश्य पड़ेगी । साहित्यकार को केवल प्रचारक ही नहीं होना चाहिए, उसमें सामाजिक उपादेयता भी होनी चाहिए । अशिव की क्षति करना साहित्यकार का लक्ष्य होना चाहिए । जो साहित्यकार ऐसा नहीं करता उसे सरस्वती के मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है । अच्छे साहित्यकार को समाज के रूप में विचार करना चाहिए एवं उसमें निहित कुरीतियों को समाप्त करना चाहिए । साहित्यकार सत्य तथा राष्ट्रीयता को अपनी श्रद्धानुसार जिस रूप में ग्रहण करे, उसी रूप में निर्भयतापूर्वक व्यक्त करे, उससे पीछे न हटे । इस प्रकार से साहित्यकार में निम्न गुणों का समावेश होना चाहिए ।

प्रश्न 6. ''युगजीवी'' और ''कालजयी'' साहित्य की प्रवृत्तियों में क्या अन्तर है ?

उत्तर–साहित्यकार दो प्रकार के होते हैं—एक युगजीवी तथा दूसरे कालजयी । युगजीवी साहित्यकार उसी समय से सम्बन्धित रहता है । उसके लेख उस काल के लिये ही होते हैं जो क्षणिक होते हैं । उसका साहित्य स्वान्तः सुखाय होता है किन्तु युग परिवर्तन व समाज परिवर्तन के बाद उनके साहित्य का कोई महत्त्व नहीं होता है, वे स्वार्थों की दृष्टि से साहित्य की रचना करते हैं, सामाजिक भावनाओं से हीन रहते हैं । समाज की परिस्थितियों से आँखें बन्द कर अन्धे हो जाते हैं । उन्हें साहित्य की रचना करने व सरस्वती के मन्दिर में बैठने का कोई अधिकार नहीं होता । वे अच्छे साहित्यकार नहीं कहलाते हैं । उनका साहित्य रचनामात्र होता है ।

किन्तु कालजयी साहित्यकार अच्छे साहित्यकार होते हैं । उनका साहित्य अमिट होता है । समाज सुधारक प्रवृत्ति से ओतप्रोत होता है । समाज के युग में कितना ही परिवर्तन क्यों न हो जाये, उनकी साहित्य परम्परा अमर रहती है । प्रत्येक युग में शिक्षा ग्रहण करने योग्य होती है । उनका साहित्य परान्तः सुखाय होता है । उनकी साहित्यिक रचनाएँ निर्भीकता से परिपूर्ण होती हैं । उनमें बनावटीपन का अभाव होता है । ऐसे साहित्यकार

युग-युग तक पूजनीय होते हैं। उनकी शिक्षा एवं साहित्य मानव जीवनोपयोगी होता है। उनका सरस, सरल, सुधोपम साहित्य सत्यता से मानव जीवन पर अमिट छाप छोड़ता है। उनका साहित्य अनुकरणीय होता है। साहित्य क्षेत्र में उनकी उपादेयता हर युग में सहायक होती है। वे प्रत्येक युग के युगदृष्टा साहित्यकार कहलाते हैं।

इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि युगजीवी और कालजयी साहित्यकार क्रमशः अस्थाई और स्थायी होते हैं। एक का प्रभाव परिवर्तनशील तो दूसरे का प्रभाव चिरस्थायी होता है। एक स्वान्तः सुखाय तो दूसरा परान्तः सुखाय प्रवृत्ति वाला होता है।

प्रश्न 7. क्या युगजीवी साहित्य भी कालजयी (शाश्वत) बन सकता है ? किस प्रकार ? उत्तर दीजिए।

उत्तर–युगजीवी साहित्यकार कालजयी बन सकता है; क्योंकि यदि साहित्य स्वान्तः सुखाय न होकर परान्तः सुखाय हो तो ऐसा हो सकता है जैसे कि तुलसीदासजी के बारे में कुछ लोगों की मान्यता है कि उनका साहित्य स्वान्तः सुखाय के लिये ही लिखा गया। उनका यह सोचना और कहना गलत है क्योंकि इनका साहित्य परान्तः सुखाय ही है। उस समय से आज उनका साहित्य सबको सुख व मार्ग-दर्शन देता ही आया है और जब तक यह सृष्टि रहेगी तब तक सुख देता ही रहेगा। इस कारण से तुलसीदास जो युगकवि से कालजयी कवि बन गये, इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि युग कवि कालजयी बन सकता है। यदि उसका साहित्य स्वान्तः सुखाय न होकर परान्तः सुखाय हो। उसके साहित्य से प्रेरणा लेकर समाज अपना विकास करेगा। वह साहित्यकार काल पर विजयश्री प्राप्त कर लेगा जिससे साहित्यकार शाश्वत अमर ही रहेगा।

प्रश्न 8. साहित्यकार के दायित्व पर एक लघु लेख लिखिए।

उत्तर–साहित्यकार प्राणी जगत का एक अंग ही होता है। साहित्यकार सबसे प्रथम एक मनुष्य अर्थात् सामाजिक प्राणी ही होता है। उस समाज का प्राणी जिसका साहित्य के साथ अन्योन्याश्रित का सम्बन्ध होता है अर्थात् साहित्य और समाज एक-दूसरे के प्रतिपूरक हैं। दोनों एक-दूसरे के भाव-विचार, सामग्री और प्रेरणा प्राप्त करके अपने प्रत्यक्ष स्वरूप का निर्माण तो किया ही करते हैं, अपने आपको सजाया-सँवारा भी करते हैं। निर्माण, सृजन और सजाने-सँवारने की इस सारी प्रक्रिया का माध्यम हुआ करता है—साहित्यकार। अतः साहित्यकार को दोहरे दायित्व के निर्वाह के दबावों में जीना एवं सृजन प्रक्रिया में प्रवृत्त होना पड़ता है। समाज और साहित्य दोनों के प्रति साहित्यकार को समान रूप से अपना दायित्व-निर्वाह करना पड़ता है।

साहित्यकार सामान्य नहीं है; बल्कि एक संवेदनशील सामाजिक प्राणी होता है। हमारे व्यवहारजगत में जीवन और समाज में जो कुछ भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष घटित होता है, तो उसका न्यूनाधिक अनुभव प्रत्येक मानव अवश्य करता है, उसके प्रति सामान्य प्रतिक्रिया भी हर मनुष्य प्रायः प्रकट किया करता है, पर उसकी गहन अनुभूति एवं सजग सक्रिय प्रतिक्रिया उस युग के साहित्यकार की सजग लेखनी के माध्यम से ही होती है। इसी कारण वह जीवन समाज का अगुवा तो बन ही जाता है, उसका दायित्व भी बढ़ जाता है। इतिहास गवाह है कि प्रत्येक युग में साहित्यकार ने अपनी सजगता से इस उत्तरदायित्व का निर्वाह भली प्रकार से किया है। वीणा के तार पर अँगुली का स्पर्श मात्र ही झंकार पैदा कर देता है और साहित्यकार का हृदय, मन, मस्तिष्क वीणा के सूक्ष्म को कोमल तारों से कम

संवेदनशील नहीं होते, जो कि समय और घटनाओं की चोटें सहकार भी झंकृत न हो। वह झंकार ही उसकी कला या साहित्य के रूप में अवतरित होकर जातियों, संस्कृतियों और राष्ट्रों की अमर धरोहर बन जाया करती है।

साहित्यकार की मानसिकता युग सापेक्ष तो होती है, परम्पराओं की उदात्त अनुभूतियों से रंजित भी रहती है। इसी कारण उसका दायित्व अपने समकालीन जीवन का चित्रण करना तो होता ही है, युग जीवन को नेतृत्व देकर उसका पथ-प्रदर्शन करना भी होता है। वह अपने उज्ज्वल अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को ध्वनित करते हुए भविष्य के लिये भी मार्ग-प्रशस्त कर देता है। इसी कारण साहित्यकार को केवल स्वप्नदृष्टा ही नहीं, बल्कि भविष्यदृष्टा भी कहा जाता है। जब कभी भी किसी देश की राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और संस्कृति संकट में पड़ी, युग के साहित्यकारों ने अपनी सबल लेखनी उठाकर राष्ट्रों, जातियों और संस्कृतियों में नव प्राणों का संचार किया। इसके उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। कवियों, लेखकों की वीणा ने इस प्रकार के संकटकालों में नयी ऊर्जा, नयी प्रेरणा और सजगता का संचार कर नवजागरण के नये मान और मूल्य स्थापित कर दिये। इस प्रकार साहित्यकार का यह गौरवपूर्ण दायित्व हो जाता है कि वह अपनी सभ्यता-संस्कृति, अपने देश और राष्ट्र को उचित मार्ग से भटकने न दे। अपनी वाणी द्वारा हमेशा उसकी धमनियां में नये रक्त का संचार करता रहे। उसकी चेतना को जागृत एवं सक्रिय रखे। उसकी ऊर्जा को चुकने न दे।

युग-युगों में रचे गये साहित्य का इतिहास साक्षी है कि सच्चे साहित्यकार ने अपने इस दायित्व का निर्वाह हमेशा सब प्रकार के लोभ-लालच से दूर रहकर किया है। मध्यकाल का ही उदाहरण ले लीजिए। वह युग घोर अराजकता और संक्रमण का था। धर्म और सत्कर्त्तव्यों का मार्ग भूलकर लोग निरन्तर पथ-भ्रष्ट हो रहे थे। धर्म के नाम पर बाह्य आडम्बरों, पाखण्डों का बोलबाला हो रहा था। सामाजिकता के नाम पर कुरीतियों-कुप्रथाओं को बढ़ावा दिया जा रहा था। राजनीति के नाम पर आज की तरह का ही अराजकता और भ्रष्टाचार पनप रहा था। तब कबीर, नानक, तुलसीदास आदि कवियों ने घोर निराशा और विघटन के विरुद्ध अपनी ओजस्वी वाणी मुखरित करके न केवल भारतीय सभ्यता व संस्कृति बल्कि समूची मानवता को विघटनकारी दुष्परिणामों से बचाया। उनसे पहले वीरगाथा काल में कवि अपने स्वार्थों से अभिभूत होकर राज्याश्रयों में रह कर आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा में अपनी वाणी का अपव्यय करते रहे। भक्तिकाल के परवर्ती कवियों ने यही सब किया। परिणामस्वरूप धर्म, समाज और राजनीति आदि प्रत्येक स्तर पर संघर्ष का दौर चलता रहा। हर मानवीय मूल्य का विघटन होता गया। यहाँ तक कि देश पराधीन हो गया। भक्तिकाल के कवियों को कोई राजा-महाराजा, कोई सम्राट अकबर या अन्य धनधान्य के लालच में खरीद न सका। परिणामस्वरूप आज भी उनका साहित्य जातीय जीवन को नवप्रेरणा देने की क्षमता रखता है। इसके विपरीत वीरगाथा और रीतिकाल का काव्य मात्र ऐतिहासिक अध्ययन की वस्तु बनकर रह गया। भूषण आदि कुछ कवियों की वाणी को छोड़कर उस सबका और कोई महत्त्व नहीं माना जाता है।

आधुनिक काल के प्रारम्भ होते ही देश के सजग साहित्यकार एक बार फिर से जीवन, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का तीव्र अहसास करने लगे। न केवल हिन्दी भाषा के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे सजग कवियों, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के

कवियों ने भी राष्ट्र की खोई और सोई चेतना को जगाकर स्वतन्त्रता, स्वाधीनता के लक्ष्य को पाने का अहसास पूरी तरह शिद्दत के साथ किया। अपने साहित्य में इसी प्रकार की चेतनाओं को ही रूपान्तर प्रदान कर जन-जन तक पहुँचाया। उसी का परिणाम है कि आज हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक होने का गौरव पा सके हैं। जब देश स्वतन्त्रता संग्राम में जूझ रहा था तब साहित्यकार भी सभी प्रकार के त्याग का परिचय देकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्यों तक पहुँच पाने में जन-जागरण का महान् दायित्व निभा रहे थे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक युग का वास्तविक एवं जागरूक साहित्यकार जनजीवन और जनमार्ग को प्रशस्त करने के लिये आगे-आगे रहा करता है। आज जबकि राष्ट्रीय मानवीय मूल्यों का संकट एक बार फिर से उपस्थित है, साहित्यकार उससे बेखबर रह निष्क्रिय होकर बैठा हुआ नहीं है; बल्कि मानवता की अस्मिता को बचाने के लिये अपनी लेखनी और वाणी के अस्त्र से निरन्तर जूझ रहा है।

एक जागरूक और सक्रिय साहित्यकार हमेशा समाज की नाड़ी को पहचान कर उसकी गति-दिशा के उपयुक्त ही उपचार में प्रवृत्त होता है। आज हमारे देश में अनेक प्रकार की आन्तरिक-बाह्य विघटनकारी शक्तियाँ सक्रिय हैं। राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता और भावात्मक एकता को कई प्रकार की नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उस पर निहित स्वार्थों वाली राजनीति और उसके अभिभावक राजनेता आई हुई दरारों को पाटने के स्थान पर भी चौड़ा करने में अपनी शक्ति, समय और साधनों का दुरुपयोग कर रहे हैं। इस दलबन्दी से संबद्ध अनेक साहित्यकार भी निश्चय ही भटके हुए दिखाई देने लगे हैं। इन विषम परिस्थितियों में तटस्थ, दल निरपेक्ष सहज मानवीय चेतना वाले साहित्यकारों का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि वे देश और उसकी भावात्मक एकता व अस्मिता की रक्षा के लिये लेखनी और वाणी को सजग-सुदृढ़ सम्बल लेकर आगे आयें, ताकि राष्ट्रीय चरित्र और उदात्त मानवीय मूल्यों की रक्षा संभव हो सके। हमारा दृढ़ विश्वास है कि साहित्यकारों ने हमेशा इस प्रकार की चुनौतियों का उचित उत्तर दिया है, अब भी आगे कदम बढ़ाकर देंगे। अन्यथा उनके अपने अस्तित्व के सामने भी एक मोटा प्रश्न-चिन्ह लग जाने का खतरा बना रहेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

प्रश्न 9. आशय स्पष्ट कीजिए—

(अ) साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता।

उत्तर—इस कथन के माध्यम से लेखक यही कहना चाहते हैं कि किसी भी साहित्यकार का सम्बन्ध व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित होता है। इनसे हीन होकर वह किसी भी प्रकार के साहित्य की रचना करने में समर्थ नहीं होता है। जब तक वह संसार की परिस्थितियों से सम्बन्धित नहीं होता या इससे प्रभावित नहीं होता वह साहित्यिक रचना लिखने के लिये प्रेरित नहीं होता; क्योंकि वह भी एक उसी समाज का अंग है और उसी से वह प्रभावित होता है। इसलिये साहित्य समाज पर आधारित होता है। उसके बिना किसी प्रकार की रचना करने में समर्थ नहीं होता है। यदि उससे बचने का प्रयत्न भी करे तो बच नहीं सकता है और न वह यह कह सकता है कि मैं अपनी घड़ी के अनुसार इतने बजे से लेकर इतने बजे तक अपने चारों ओर की परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण करूँगा और इसके बाद नहीं। लेखक चाहे या न चाहे परिस्थितियाँ उस पर प्रभाव डालती हैं। इसलिये यही कहा जा सकता है कि साहित्यकार कभी शून्य में रचना नहीं करता, वह तो व्यक्ति व राष्ट्रीय जीवन से जुड़ा हुआ है।

(आ) मेरे मत में स्वांतः सुखाय रचना असम्भव है ।

उत्तर–इस कथन के माध्यम से डॉ. सम्पूर्णानन्दजी यही कहना चाहते हैं कि हमारी रचना स्वान्तः सुखाय है तो वह कुछ समय तक तो आत्मा की सन्तुष्टि हो सकती है किन्तु जब वह साहित्य समाज में आता है तो वह रचना स्वान्तः सुखाय नहीं रहती है । स्वान्तः सुखाय रहना असंभव है । जैसे कि लोग कहते हैं कि तुलसी साहित्यकार स्वांतः सुखाय रचा गया है तो वहाँ पर हमें तनिक रुककर विचार करना चाहिए कि वहाँ ''स्वांतः'' से हमारा क्या प्रयोजन है । तुलसी ने जिस समय यह घोषणा की कि मैं स्वान्तः सुखाय रचना कर रहा हूँ । उनके साहित्य को आने वाले साहित्यकारों ने भी ग्रहण किया और आज हम भी उनके साहित्य से आनन्दानुभूति को प्राप्त कर रहे हैं । इसी कारण उनकी साहित्यिक रचना परान्तः सुखाय बन गयी । इसी कारण यह कहा गया है कि कोई भी साहित्यकार के द्वारा स्वान्तः सुखाय रचना करना असंभव होता है । वह तो परान्तः सुखाय रचना ही करता है ।

(इ) यथार्थ चित्रण से साहित्यकार का कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता ।

उत्तर–इसके माध्यम से डॉ. सम्पूर्णानन्दजी यही कहना चाहते हैं कि साहित्यकार समाज की यथार्थ वास्तविकताओं का चित्रण करे उसके साथ-साथ साहित्यकार का दायित्व व कर्त्तव्य तब पूरा हो जाता है, जबकि समाज की परिस्थितियों को जानकर उनके सुधारों के उपाय भी सुझाये । जैसे—वैद्य शरीर के विकारों को जानने के साथ स्वास्थ्य के लक्षणों को भी जानता है, उसी प्रकार साहित्यकार को भी समाज के शरीर के विकारों को जानने के साथ-साथ समाज के स्वास्थ्य के लक्षणों को भी जानना चाहिए । एक बात यहाँ पर स्मरण रखने की है कि साहित्यकार प्रचारक नहीं है । इसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी रचना की सामाजिक उपादेयता नहीं होती; बल्कि हमारे प्राचीन संस्कृत के साहित्यकारों ने साहित्य को उपादेयता की आधारभूमि पर प्रतिष्ठित किया है । इसलिये यही कहा जा सकता है कि साहित्यकार गुणों या अवगुणों का जो समाज में होते हैं उनका चित्रण करने से ही उसका दायित्व पूर्ण नहीं हो जाता है अपितु उसका दायित्व है कि वह समाज की कुरीतियों व कुप्रथाओं को दूर करने के उपाय भी सुझाये जिससे साहित्य की उपादेयता सिद्ध हो सके ।

(ई) अशिव की क्षति साहित्य का बड़ा पुनीत अनुष्ठान है ।

उत्तर–काव्य प्रकाश में साहित्यकारों ने काव्य के लक्षण बताते हुए कहा है कि अशिव की क्षति साहित्य का बड़ा पुनीत अनुष्ठान है । कहने का तात्पर्य है कि यदि साहित्यकार तामसिक प्रवृत्तियों से उद्धार करता है तो यह उसका पुनीत कर्म है । इसलिये साहित्यकार का यह तथ्य होना चाहिए कि वह अशिव की क्षति करें । जो साहित्यकार समाज को कुरीतियों व कुप्रथाओं से छुटकारा नहीं दिला सकता है वह सरस्वती के मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं रखता है । अशिव की क्षति के साथ-साथ हमें समाज के रूप पर भी विचार करना चाहिए अर्थात् इस प्रश्न पर दासता और शोषण की अशिव शक्तियों के विनाश के उपरान्त मनुष्य किस ओर जाए और समाज किस ओर जाए । कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्यकार को चाहिए कि समाज को उत्थान या उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करे जिससे यह साहित्य का पुनीत अनुष्ठान ही कहलायेगा ।

(उ) योगी की भाँति सच्चे कलाकार की पहचान भी ऋत और सत्य है ।

उत्तर–लेखक साहित्यकार की विशेषताओं को प्रकट करते हुए कहता है कि साहित्यकार योगी की भाँति सच्चे कलाकार की पहचान भी ऋत और सत्य है । जिस बात को विद्वान तर्क द्वारा देर में पाता है, उसको कलाकार अपनी प्रतिभा द्वारा, अपनी अन्तश्चेतना द्वारा जल्दी पा जाता है । कोई साहित्यकार राष्ट्र के लिये उपयोगी साहित्य का सृजन कर रहा है, इस बात की अकेली पहचान यह है कि साहित्यकार सत्य तथा राष्ट्रीयता को अपनी श्रद्धानुसार जिस रूप में ग्रहण करे, उसी रूप में निर्भयतापूर्वक व्यक्त करे, भागे नहीं । यदि वह ऐसा करता है तो बिना किसी 'वाद' का प्रचारक हुए उसका साहित्य राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी होगा । कहने का तात्पर्य यह है कि सच्चा साहित्यकार सत्य की खोज करता है । अपने विचारों को निडरतापूर्वक सबके सामने प्रकट करता है । वही साहित्यकार राष्ट्रीय व सामाजिक साहित्यकार कहलायेगा ।

---

7. अभी-अभी हूँ, अभी नहीं

(विद्यानिवास 'मिश्र')

लेखक परिचय–विद्या निवास मिश्र का जन्म 16 जनवरी, 1926 ई. को गोरखपुर में हुआ । इन्होंने प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गोरखपुर में ही प्राप्त की । इसके बाद विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये प्रयाग गये । भारतीय साहित्य और संस्कृति का व्यापक और गम्भीर ज्ञान होने के कारण उनकी विचारधारा मूलतः उन विषयों की ओर उन्मुख हुई जिनमें लोक संस्कृति और लोकजीवन की गंगा-यमुना प्रवाहित होती है । अनेक वर्षों तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात् विश्वविद्यालय में उच्च पद पर रहे और नवभारत टाइम्स के प्रधान सम्पादक के रूप में कार्य किया ।

इनके निबन्धों में संस्कृत वाङ्मय और दर्शनशास्त्र की अबाध गति की झलक मिलती है । इन्होंने हिन्दी निबन्धों को एक नई दिशा का मोड़ दिया । इनके निबन्ध विचारात्मक और व्यक्तिव्यंजक हैं । जिनमें लोक संस्कृति एवं लोक जीवन का रंग चढ़ा हुआ है । इनके निबन्ध अत्यन्त अनुपम, सजीव और यथार्थ हैं । इनके निबन्ध वैविध्यपूर्ण लोक जीवन की छवियों से परिपूर्ण हैं, जिनका आनन्द पढ़कर ही उठाया जा सकता है । सांस्कृतिक बोध, अनुभूति की गहराई, लोकमानस की व्यंजना और काव्यमयी चित्रमयता आदि गुण उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषताएँ हैं । समसामयिक विषयों पर लिखे गये उनके निबन्ध वर्तमान को अतीत के संदर्भों से जोड़ते हुए भविष्य के लिये भी प्रेरणाप्रद हैं । इनके निबन्ध संग्रह तुम चन्दन हम पानी, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, जीवन प्रलम्भ है, जीवन सौभाग्य है, शिरीष की याद आई, फागुन दूई रे दिना, लड़ी, नदी, नारी और संस्कृति आदि निबन्ध लिखे । उनकी भाषा-शैली उनकी अपनी है । संस्कृत की तत्सम शब्दावली के बीच-बीच प्रयुक्त उनकी ग्रामीण भाषा के अर्थव्यंजक शब्द विषय-वस्तु को अधिकाधिक

सजीव और प्रखर बनाने में 'नाविक के तीरों' का काम करते हैं। इसी कारण से मिश्र का स्थान विशिष्ट कोटि का माना जाता है।

पाठ-परिचय–यह विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित व्यक्तिपरक व्यंजक ललित निबन्ध है। इसमें मिश्रजी ने आज की बहुआयामी गतिविधियों के अनेक प्रश्न उठाकर व्यक्ति, समाज और देश के सम्मुख उपस्थित ऐसी अनेक समस्याओं का उल्लेख किया है, जिन पर बुद्धिजीवी लोग जुबानी जमा-खर्च तो बहुत करते हैं, पर करने-धरने के लिये उनके पास कुछ नहीं होता। कहने का तात्पर्य है कि आधुनिक युग में समाज में बाह्याडम्बरों और दकियानुसी की प्रवृत्ति तो अत्यधिक मात्रा में फैली हुई है। उससे यदि हकीकत का सामना करने के लिये कहा जाये तो ऐसा लगता है मानो कोई सपना था। कभी तो दिखाई देता है, कभी नजरों से दूर हो जाता है। इस संसार में सपनों के समान दिखावटीपन तो है किन्तु हकीकत कुछ नहीं है। इसीलिये तो कहा जाता है कि अभी नहीं हूँ। इसमें मिश्रजी ने अपनी व्यक्तिनिष्ठ, समास शैली में आज की विरोधमूलक विचारधारा, निम्नस्तरीय स्वार्थपरता तथा अपनी-अपनी खिचड़ी अलग-अलग पकाने की कूटनीति एवं दम्भपूर्ण प्रकृति के अनेक उदाहरण दिये हैं कि समाज में बाह्याडम्बरों से युक्त तर्काभास तो कई मिल जायेंगे किन्तु उनसे कुछ करने के लिये या वास्तविकता जानने के लिये पूछा जायेगा तो उससे दूर हटने का प्रयास ही करेगा। इस युग में जनहित, मानवतावाद तथा उच्च आदर्शों का बखान केवल ढकोसला रह गया है। मुख्य विषय के रूप में इस निबन्ध में मिश्रजी ने सपना, खालीपन और यथार्थ जैसे विषय का अपने आपके विचारों के रूप में चित्रण किया है, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ होता रहता है। सपने के बारे में कहा गया है कि सपने का डर भी ऐसा होता है कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे सब कुछ है किन्तु कुछ भी नहीं है और खालीपन में भी ऐसा ही प्रतीत होता है। व्यक्ति कभी तो इस संसार में सब कुछ देखता है और कभी ऐसा महसूस करता है कि संसार में कुछ भी नहीं है। यह जीवन ही व्यर्थ है। 'यथार्थ' का वर्णन इसी प्रकार किया है कि हमने जो कुछ पढ़ा है, सुना है, देखा है, सब ठीक है, तो कभी ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें बिल्कुल भी यथार्थता नहीं है। इस प्रकार से मिश्रजी यह बताना चाहते हैं कि इस संसार का वातावरण ही ऐसा है कि मनुष्य यही सोचता है—कभी तो मैं हूँ और कभी यही सोचता है कि मैं नहीं हूँ और मनुष्य को इसमें शंका होती है।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. हिन्दू धर्म का असली स्वरूप कैसा है ?
   (क) उदार और विश्वजनीन (ख) संकीर्ण और रूढ़िवादी
   (ग) साम्प्रदायिक और पुराणपंथी
   (घ) प्रगतिशीलता का विरोधी। **उत्तर–(ख)**
2. लेखक को ऐसा क्यों लगता है, 'क्योंकि' के आगे उपवाक्य जोड़कर वाक्यों की पूर्ति कीजिये—
   उत्तर–(क) हर साधन आत्मवंचना है, क्योंकि हर वंचना साधन बनकर बहुत जल्दी पुजने लगती है।

(ख) हर लड़ाई बेमानी है, क्योंकि वह बूमरंग की तरह अपने ही ऊपर उलट जाने की जबरदस्त भावना रखती है।

(ग) हर मंथन जहर उगलता है, क्योंकि अमृत जो अनमथे राजबावड़ियों में उतर रहा है। उन बावड़ियों पर श्वेत फणियों का पहरा है।

(घ) हर रोज लम्बी यातना है, क्योंकि सत्य की टाँग टूट गई है।

(ङ) सही बात कहने का साहस मखौल है, क्योंकि कायरता सिंहासन पर खड्ग हस्त विराजमान है।

3. हाँ अथवा नहीं में उत्तर दीजिये—

(क) सरकार जनता की है, पर क्या जनता सरकार की है?

उत्तर–नहीं।

(ख) आजकल सत्यों का महासत्य 'कुर्सी' है।

उत्तर–हाँ।

(ग) आदर्शों के गुफा मन्दिर में अब हर चीज बिकाऊ है।

उत्तर–हाँ।

(घ) जड़ता का जीवनदर्शन सब जगह छा गया है?

उत्तर–हाँ।

4. सही शब्दों पर (√) का निशान लगाइये—

(क) आजकल सत्यनिष्ठा का अवमूल्यन/बढ़ोतरी हो रहा है।

(ख) देश की नई पीढ़ी दिग्विहीन/विकासशील हो रही है।

(ग) देशी चीजों की बिक्री पर छूट एक प्रकार की लूट/राष्ट्रीय सम्पत्ति ही है।

उत्तर–(क) अवमूल्यन (ख) दिग्विहीन (ग) लूट।

5. गाँधीवाद और अहिंसा के स्टॉक के साथ-साथ जिन-जिन वस्तुओं का भण्डार केवल शब्दों में भरा पड़ा है—उनके नाम लिखिये। जैसे—मानवतावाद आदि।

उत्तर–जैसे—पंचशील, मातृभूमि, हिमालय, भागीरथी, बलिदान, आहुति इत्यादि।

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

उत्तर–(क) देश की नई पीढ़ी के मन में विलायती चोर घुस गया है।

(ख) हर अनुष्ठान फीका लगता है, क्योंकि फ्लैश बल्ब की तेज रोशनी उसकी सिलवटों को स्पष्ट कर देती है।

(ग) कायरता सिंहासन पर खड्गहस्त विराजमान है।

(घ) पालथी मारकर बैठे-बैठे कुर्सी तोड़ना ही सच्चा सक्रिय व्यापार है।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. 'अभी-अभी हूँ अभी नहीं' लेख लिखने से पूर्व लेखक के मन में किन-किन विषयों का अम्बार लग जाता है?

उत्तर–'अभी-अभी हूँ अभी नहीं' लेख लिखने से पूर्व लेखक के मन में भावों से मन में बड़ी उमड़-घुमड़ हो रही है। कभी हिन्दू धर्म के उदार और विश्वजनीन स्वरूप पर लिखने को जी करता है। कभी देश में निष्ठा के तेजी से अवमूल्यन पर, कभी अपने देश पर। सैकड़ों वादे ताक पर पड़े-पड़े ऊब चले हैं, कोई जोरदार हुआ तो चीख कर

बुलाता है, चौंक पड़ता है, स्वधर्म अलग दबाव देता है, जड़ता की प्राचीर तोड़ो । पर कहीं निषेध का ऐसा शिलाखण्ड आकर पड़ गया है कि सारी उमड़-घुमड़ इसमें टकरा कर पीछे की ओर मुड़ जाती है, कहीं निकलने का रास्ता नहीं पाती, कहीं कोई ऐसी प्रतिघातिनी प्रभा है जो देखने नहीं देती, कहीं कोई ऐसी खौफनाक आवाज है, जो घिग्गी-बांध देती है, कहीं कोई ऐसा देवता है, जो बने-अधबने चित्रों की कौन कहे, मन को अंके चित्रां को भी अपने स्याही पुते हाथ से मेटने पर उतारू है । इस प्रकार के लेखक के मन में कई प्रकार के विषयों का अम्बार लग जाता है कि क्या करूँ, क्या नहीं । इस प्रकार से लेखक पल-प्रतिपल सोचता रहता है, कुछ करने का जी नहीं चाहता है और यही सोचता है कि मैं क्या हूँ, क्या नहीं । इस प्रकार लगातार दृष्टिभ्रम बना ही रहता है ।

प्रश्न 2. जड़ चिन्तन को नंकारने वाला चिन्तन किसे कहा गया है ? उस चिन्तन में हर बात के दो पहलू क्यों नजर आने लगते हैं ?

उत्तर–जड़ चिन्तन को नकारने वाला चिन्तन लेखक ने मनोविचारों को कहा है कि लेखक के विचार प्रत्येक बात के दो परिणाम निकालते हैं । मानव एक बात पर आधारित नहीं होता । उसके पक्ष व विपक्ष को देखकर सोचता है कि मैं जो लिख रहा हूँ किसके लिये लिखा जाय, किससे कुछ कहा जाय, कौन मेरी बातों को पढ़ता है, इनको ध्यान से कौन सुनता है । लोग इधर से सुनते उधर से निकाल देते हैं और पढ़ने-सुनने से लोगों पर फर्क भी क्या पड़ता है । उस पर ध्यान ही नहीं देते, उसके दो अर्थ निकालते हैं । ऐसा हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है । जड़ चिन्तन (मूर्खता से सोचा गया) नकारने वाला चिन्तन भी तो कोई बाती उकसा नहीं पाता अर्थात् व्यक्ति कोई उत्तेजना से प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता ।

हर साधना आत्मवंचना लगती है । इसका तात्पर्य है साधना को लोग नहीं समझते हैं । वह हमें धोखा दे रहा है, क्योंकि हर वंचना साधना बनकर बहुत जल्दी पुजने लगती है अर्थात् बुराई को ही समाज में स्थान मिलता है । हर लड़ाई बेमानी लगती है क्योंकि वह बूमरंग की तरह अपने ऊपर ही ऊपर जाने की जबर्दस्त संभावना रखती है । यदि व्यक्ति किसी के लिये संघर्ष करता है तो ऐसा लगता है इसका ही स्वार्थ सिद्ध हो रहा है । हर मंथन जहर उगलकर थक जाता है अमृत जो अनमथे राजबावड़ियों में उतर रहा है, हाँ, उन बावड़ियों पर श्वेत फणियों का पहरा है । कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मानव मनन करके विचार प्रकट करता है तो लोग उसे अमृत न समझकर जहर ही समझते हैं क्योंकि सत्य की टांग टूट गई अर्थात् वर्तमान में सत्य का कोई महत्त्व नहीं है । उसे तो चर्खी पर फिट कर दिया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि सत्य की खोज में कई यातनाएँ भुगतनी पड़ेंगी । उस सत्य रूपी चर्खी को घुमाने वाला मिस्त्री है, वह मिस्त्री सत्य को मेले में घुमाकर पैसे कमाना चाहता है । वह मिस्त्री भी एक संगठन का चाकर है । पैसे का मालिक संगठन है, मिस्त्री को बस पगार मिलती है । कहने का तात्पर्य यह है कि सत्य की खोज करने वाले को पैसा मिलता है । कभी-कभी उसको बोनस मिलता है । उसका हर अनुष्ठान फीका लगता है, क्योंकि अनुष्ठान पर पड़ी क्लेश बल्ब की तेज रोशनी उसकी सिलवटों को सपाट कर देती है । पूजा का हर बोल खोखला लगता है, क्योंकि उसका शब्द मरे चाम की तरह मढ़ा हुआ है । अर्थ से उसका कोई दैहिक नाता नहीं रह गया है । सही बात कहने का साहस मखौल बन गया है क्योंकि कायरता सिंहासन पर खड़ग हस्त विराजमान है ।

कहीं कोई चीज छूती भी है तो वह छुअन बड़ी घबराहट पैदा कर देती है, मानो वह किसी जहरीले कीटाणु की छुअन हो। कहीं कुछ दर्द होता भी है तो वह बहुत पराया लगता है। और अन्त में यही सोचता है कि मेरा तो अंग-अंग के दर्द से संन्यास ले चुका है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में प्रत्येक कार्य के दो पक्ष देखे जाते हैं। वर्तमान समय में नकारात्मक पक्ष पर अत्यधिक बल दिया जाता है। सही बात को भी व्यक्ति गलत दृष्टि से ही देखने का प्रयास करते हैं। यदि कोई परोपकार भावना से कार्य करता है तो भी यही लगता है कि स्वार्थों को सिद्ध कर रहा है या संसार उसे विश्वासघाती ही समझता है।

प्रश्न 3. आज आदर्शों और संस्कृति के नाम पर हर चीज 'बिकाऊ' क्यों हो रही है ?

उत्तर–आज के युग में प्रत्येक लक्ष्य को, आदर्शों को, नैतिक मूल्यों को खरीदा जा सकता है अर्थात् कुछ भी असंभव नहीं है। यहाँ प्रत्येक चीज बिकाऊ है। लेखक कहता है कि आदर्शों के गुफा मंदिर में बैठता हूँ तो हर मूर्ति, हर शिल्प पट्टिका, हर चंदोवा, हर खंभ, हर बार्जा, हर मेहराब पर एक तख्ती लगी दिखाई देगी जिस पर लिखा है 'बिकाऊ' है अर्थात् प्रकृति के प्रत्येक लक्ष्य बिकाऊ हैं या प्रत्येक मानवीय मूल्य बिक चुके हैं। देश की संस्कृति का प्रत्येक उपादान निर्यात के लिये रेशम की डोरियों से बंध रहा है। गँवई-देहात पर भी निर्यात की सुदृष्टि हो चुकी है। कुछ चीजें खपत के लिये हैं, उनमें मंदी आ गई है, गाँधीवाद, अहिंसा, पंचशील, मातृशील मातृभूमि, हिमालय, भागीरथी, बलिदान आहुति, मानवतावाद, इनका स्टॉक बहुत पड़ा ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति व सभ्यता के प्रतीक केवल बिकाऊ हैं जिन्हें आसानी से खरीदा-बेचा जा सकता है। इसलिये इनकी कीमत औनी-पौनी करके बिक्री पर छूट की मुनादी कर दी गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानवीय मूल्य गिर चुके हैं। देश में खरीदा तो गिने-गिनाये हैं वे सरकार के ही अंग हैं, बेचारे कहाँ तक खरीदें अर्थात् इनके रक्षक ही इनके भक्षक बन गये हैं। जड़ता का जीवन दर्शन अब शासन ने पूरी तरह नियामक नीति के रूप में स्वीकार कर लिया है, हिंसा का जवाब सरकार क्यों दे, जनता देगी। गरज सरकार की है या जनता की। सरकार जनता की है पर जनता सरकार की तो है नहीं। सरकार की तो बस सरकार, सरकार है, सरकार की दौड़, जहाँ जीत तपक कर बैठने वाले की है, दौड़ने वाले की नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि मानवीय मूल्यों की रक्षा करने वाले यदि परिश्रम करते हैं तो उन्हें नहीं मिलते अपितु जो विश्राम करता है उसे मिल जाते हैं। आज के जमाने में सत्यों का सत्य महासत्य कुर्सी है, कुर्सी की ही लड़ाई है, चाहे वह आरामकुर्सी हो या काम कुर्सी (लालच कुर्सी) हो। वस्तुत: कुर्सी बैठने और बैठकर ऊँघने या सोने के लिये है, काम के लिये नहीं। उसे तो उसको तोड़ने का क्रिया व्यापार करना है। इस कारण कहा जा सकता है आज के आदर्शों और संस्कृति के नाम पर प्रत्येक वस्तु बिकाऊ है उसे आसानी से खरीदा जा सकता है।

प्रश्न 4. आजकल जनता और सरकार के बीच कुर्सी जोड़ने और कुर्सी तोड़ने की जंग किन-किन रूपों में चल रही है ?

उत्तर–जनता व सरकार के बीच कुर्सी पर व्यंग्य करते हुए मिश्रजी ने कहा है कि वर्तमान परिवेश में राजनीति ऐसी बन गई है जिसकी परिस्थितियों को सुधारना असंभव हो गया है। आज के परिवेश में जड़ता का जीवन दर्शन अब शासन ने पूरी तरह नियामक

नीति के रूप में स्वीकार कर लिया है । कहने का तात्पर्य है कि सरकार को देखकर यह कहा जा सकता है कि मूर्खों का शासन है जो अपने नियमों पर चलाकर जनता का शोषण करना चाहते हैं, जैसे हिंसा का जवाब सरकार क्यों दे, जनता देगी, उसी में हिंसा हुई है । गरज सरकार की है या जनता की अर्थात् जो इसका विरोध करता है उसी को इसी का भार उठाना है । सरकार की दौड़ जटा जीत तपककर बैठने वाले की है, दौड़ने वाले की नहीं । कहने का तात्पर्य यह है कि जनता में जीत कार्य करने वाले की नहीं अपितु दिखावे मात्र की है । सत्यों का सत्य महासत्य कुर्सी है । आज की राजनीति के राजनेता कुर्सी के पीछे दौड़ते हैं, उसी की लड़ाई लड़ते हैं । चाहे जनता की बरबादी ही क्यों न हो, इनका उल्लू सीधा होना चाहिए । आज की राजनीति को सरकार को कर्त्तव्यों एवं दायित्वों से बची कुर्सी नहीं चाहिए बल्कि आरामकुर्सी या लालच कुर्सी चाहिए जिससे उनके स्वार्थ सिद्ध हो जायें । उनकी मान्यता है कि कुर्सी यदि हमें नहीं मिलेगी तो दूसरों को भी इस पर नहीं बैठने देंगे । वे एक-दूसरे की टाँग इधर-उधर खींचने पर तुले हुए हैं । आज की कुर्सी बैठने और उस पर बैठकर ऊँघने के लिये है, कार्य करने के लिये नहीं है । कुर्सी मिलने से पहले तो उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उसके मिलने के बाद कार्य करना बन्द कर देता है, उसे तोड़ने का प्रयास करता है, पालथी मारकर उस पर बैठ जाता है और उसे तोड़ने का बार-बार प्रयत्न करता है । इस प्रकार आज की कुर्सी कार्यों को करने व सम्बन्धों को बढ़ाने की कुर्सी नहीं है बल्कि समाज व जनता को शोषण व विनाश का मार्ग दिखाने की है । जनता का शोषण कुर्सी इस प्रकार करती है । सरकार जिससे आज के युग में उसका कोई महत्त्व ही नहीं रह गया है अपितु सरकार या कुर्सी दिखावे मात्र हैं । कुर्सी लाभदायी होने के स्थान पर हानिकारक सिद्ध हो रही है ।

प्रश्न 5. लेखक ने दिन दोपहर में टेसू की फूलों की सभा का कौनसा सपना देखा और उसमें कौन-कौनसी हरकतें होने के बाद सभा भंग हुई ?

उत्तर -जब जनता व सरकार के बीच कुर्सी की लड़ाई चल रही है तो ऐसे ही वातावरण में लेखक ने दिन दोपहर एक सपना देखा । टेसू के फूलों की एक सभा हो रही है अर्थात् दायित्वहीन व्यक्ति की सभा चल रही है । सभापति के आसन पर आँकी-बाँकी गुलाबी पाग बांधे एक बदहवास किस्म का लफंगा बैठा है, गले में चैती गुलाबों का गजरा, कान में आम का नन्हा-सा तामई कर्ता, हाथों में दहकते टेसू के फूलों से नीचे से ऊपर सजा डंडा और पैरों में कचनार के फूलों की बेड़ी डाले कुछ बड़ा उन्मन-सा है । आँखों में नशा चढ़ा होने के बावजूद एक आतंक की छाया साफ दिख रही है । यह आज के राजनेताओं का प्राकृतिक सौन्दर्य का व्यंग्यात्मक वर्णन किया है । उसके बाएँ बाजू में एक पीला-सा औंधाया गुब्बारा है, उसमें दो पिचपिची आँखें बनी हुई हैं और उसमें चाँद पर चाँद ये दो बड़े-बड़े अक्षर चमकीली काली स्याही में अंकित हैं । बाएँ बाजू पर एक बौना-सा बूटा कढ़ा है या ठीक-ठीक कह एक तिकोने पुराने तरकश पर टिका हुआ है, धनुष कागज के फूलों से बना है, फूलों के रंग एक से एक शोख और चटकीले हैं पर ये कागजी फूल जगह-जगह से गोंद के उकचने से गूँथने वाले तार में लटककर अलग से हो गये हैं और तार नंगा हो गया है । सभापति के आसन के नीचे मुरझायी-सी एक चंदन वल्लरी ढही पड़ी है । इसमें लेखक ने वर्तमान राजनीतिक सभा का चित्रण प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम से किया है और उस पर व्यंग्य किया है ।

एक टेसू उठता है और सभापति को चुनौती देता है। कुर्सी से उतर जाओ, तुम्हें हम लोग सभापति नहीं मानते। बाएँ बाजू वाला गुब्बारा सिर हिलाता है, आँख पिचपिचाता है, फिर जैसे के तैसे फिट हो जाता है। दायें बाजू वाला बौना एक बार काँपते हुए तनकर खड़ा होना चाहता है, किन्तु लड़खड़ा कर गिर पड़ता है। सभापति के आसन पर बैठा हुआ बाँका आँखें तरेरना चाहता है पर आँखें और झप जाती हैं, उसके हाथ से फूलझड़ी छूटकर जमीन पर आ जाती है और दूसरा टेसू मुट्ठी बाँधे खड़ा हो जाता है। हम बसंत को अपना नेता नहीं मानते। हम इस बौने की कमान से छूटने के लिये तीर राजी नहीं हैं। हम इस गुब्बारे के जादू को अब तोड़ चुके हैं, अब हमें यह नचा नहीं सकता। हम जंगल में आग बनकर धधकते हैं। अपने बूते पर इसमें न किसी चाँद का जादू है न किसी बहार का करिश्मा। हम नहीं चाहते हमें कोई सौन्दर्य का प्रतीक माने, हम नहीं चाहते हमारी ओट में कोई अपने जी की कचोट निकाले। हम अपने को इस्तेमाल होने देने के लिये अब कतई तैयार नहीं। हम टेसू हैं हम दूसरों के लिये हैं। नहीं सिर्फ अपने लिये इतने में बड़ा शोर होता है कि अब बसन्त की सरकार नहीं चलेगी। एक-दूसरे में झगड़ा-फसाद होता है और सभापति की सभा भंग होती है और सपना टूट जाता है।

इसी प्रकार के दृश्य को हम प्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीय सरकार की सभा में एवं राज्य की सरकार में देख सकते हैं। सभी देखते हैं कि किसी भी राज्य व केन्द्र की सरकार इस सपने पर चल रही है। लोग इस प्रकार एक-दूसरे को अपमानित करने पर तुले हुए हैं और कुर्सी के पीछे दौड़ पड़ते हैं। चाहे बुराइयों का ही सहारा क्यों न लेना पड़े। इसी प्रकार सपने के समान सरकार कुछ ही क्षणों में भंग हो जाती है, जिससे जनता की बर्बादी होती है।

• **प्रश्न 6. जगने पर लेखक के मन में उस सपने की कौन-कौनसी प्रतिक्रियाएँ हुईं ?**

उत्तर–लेखक के मन में जागने पर प्रतिक्रिया हुई कि यह कैसा सपना है जो समाप्त होने पर भी हमारे चारों तरफ घूमता हुआ-सा प्रतीत होता है। उसे समाज में प्रत्यक्ष रूप से देखने पर आत्मा सिहर उठती है और ये दृश्य प्रत्यक्ष रूप से आस-पास चलते-फिरते प्रतीत होते हैं। उसी को प्रकृति सौन्दर्य के रूप में मिश्रजी ने अंकित किया है कि लेखक हड़बड़ा कर ऐसे दृश्य देखकर उठ जाता है और अनुभव करता है कि कहीं कुछ नहीं, पानी से तरकस की टट्टियों से छनकर बड़ी स्निग्ध और शीतल रोशनी आ रही है, ऊपर मद्दिम गति से पंखा चल रहा है, सिहरने कुछ पीले कोरे कागज हैं। अर्थात् सब रिक्त हैं कलम है, बगल में सुराही है, फर्श पर शीतलपाटी बिछी हुई है। एक गिलास में ठंडा पानी उँड़ेलकर पी जाता हूँ। थोड़ी तस्कीन होती है। इतने में फोन की घंटी घनघनाती है—कहिए, कैसे हैं, बहुत दिनों से मिले नहीं, आजकल मौसम में गर्मी पड़ रही है। बस यों ही फोन किया था, हाँ, अब किताब पूरी ही कर डालिए। जुलाई तक छाप दूँगा। सपना भी कैसा होता है ? व्यक्ति ख्यालों में खोया रहता है। सपना भी कैसा होता है, इतना शोर, इतना धुआँ, इतनी भाग और फिर कुछ नहीं, एक ठंडा-सा खालीपन, मौन नहीं, मौन में आदमी साँस लेता है पर महसूस नहीं करता कि साँस ली जा रही है, खालीपन में साँस एक दहशत बन जाता है, लगता है साँस खींचने या निकालने का व्यापार अपने निजी अस्तित्व का अंग न होकर कोई आरोपित या पराया व्यापार हो। कहने का तात्पर्य है कि सपना खुलने के पश्चात् चारों तरफ सन्नाटा-सा छा जाता है। दृश्यों को देखकर जी घुटने लगता है, संसार खाने को दौड़ता है। सभी एक-दूसरे के लिये विनाश का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। कोई

किसी का सहायक नहीं है अपितु नीचा दिखाने का प्रयास करते स्वार्थों में घिर कर दूसरों के शोषण व अत्याचार के मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं । इस प्रकार सपने में मनुष्य खालीपन को महसूस करता है ।

प्रश्न 7. लेखक ने ''सपना'' और ''खालीपन'' में कौनसा सम्बन्ध जोड़ते हुए उन्हें अपनी-अपनी जगह पर सच माना है ?

उत्तर–मिश्रजी ने विचार-विमर्श किया है कि सपने और खालीपन में क्या सम्बन्ध है । सपना तो झूठा है, खामख्याली है और खालीपन क्या उतना ही झूठा और उतनी ही खाम ख्याली है ? सपनों के नारे तो रटे-रटाये नारे हैं और खालीपन भी तो अकारण भय का ही परिणाम है ? नहीं-नहीं, खालीपन अगर झूठा हो गया तो जीना मुश्किल हो जायेगा, तब तो साँस भी नहीं लिया जा सकेगा ? तो क्या सपना भी उतना ही सच नहीं । आसपास दरोदीवार पर जो लाल-लाल सब्जीनुमा शब्द रातों-रात उग आएँ हैं वे क्या झूठे हैं ? हत्या, आगजनी, लूटपाट, विध्वंस क्या झूठ है ? आज भी क्या जवानी जीवन में छंद की खोज का पर्याय है ? आज भी क्या तरुण रक्त सौष्ठव पाने के लिये व्याकुल है । आज भी क्या यौवन रचनात्मक प्रकार का संचार है ? क्या लयहीनता, असामंजस्य और विध्वंस ये हमारी तरुणाई के नये पर्याय होकर नहीं आ गये । इसलिये सपना झूठा नहीं है । सपना अपनी जगह पर सच है, खालीपन अपनी जगह पर खालीपन का कवच धारण कर ले तो सपना झूठा हो, सच्चा हो, असर नहीं करता । पर एक बात है आग का सपना बुरा होता है । इसलिये शांति-वांति करा देनी चाहिए न जाने कुछ भी हो सकता है । खालीपन का कवच यह वार भी खाली करा देनी चाहिए क्योंकि कौन अकेला सिरदर्द ले, मुझे तो सम्मेलनों के न्यौते मिलते ही रहेंगे । बहुतों के भाग्य निर्णय के लिये मुझे बुलाया जायेगा ही और जब चारों ओर आग लगेगी तो फिर अकेले मैं कर ही क्या पाऊँगा और अपने आपको खालीपन के रूप में महसूस करता है । कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति सपना तो देखता रहता है किन्तु अपने आप पर आती है तो मनुष्य खालीपन का महसूस करता है ।

प्रश्न 8. आजकल बुद्धिजीवी वर्ग की तुलना सुरती सूँघने वाले गाँव के निवासियों से क्यों की गई है ?

उत्तर–हमारे प्यारे भारतदर्ष का औसत बुद्धिजीवी इसी 'सुरतिहवा गाँव' के एक विस्तृत रूपांतर में निवास करता है और वह हर आसन्न संकट के बारे में काफी जागरूक है, कारण मीमांसा में बड़ा फर्क है, बड़ा त्रिकालदर्शी है, प्र यह सब होते हुए वह निरुपाय है, क्योंकि वह पंगु है । यह तो विज्ञान की सुंघनी है, जो उसे जिलाये रखे हैं । यह सुंघनी की डिब्बियाँ उसका सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं । जिस दिन गोल वाली डिबिया वह कक्षा में लाता है, उस दिन पृथ्वी गोल रहती है और जिस दिन चौकोर चाँदी की डिबिया लाता है उस दिन पृथ्वी चौकोर हो जाती है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि आज का बुद्धिजीवी वर्ग अपने आपको बुद्धिमान समझता है किन्तु उसे सुरती सूँघने वाला कहा गया है क्योंकि वह पुराने बाह्याम्डबर एवं दकियानुसी विचारों में खोया हुआ है । आज के विज्ञान के युग में भी मानव पुराने विचारों से युक्त है । जैसे ग्रामीण निवासी के समान विचारधारा से युक्त होते हैं । सब कुछ होते हुए भी अपने आप में खालीपन को महसूस करता है । वह यही सोचता रहता है कि संसार ऐसा लगता है कि किसी चौकोर डिबिया में बन्द करके रख दिया हो और सम्पूर्ण विश्व में ही ऐसी परम्पराएँ फैली हुई हों । इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि आजकल के बुद्धिजीवी मानव की तुलना सुरती सूँघने वाले गाँव के निवासियों से की है ।

प्रश्न 9. लेखक ने अपने निबन्ध के अंत में "सपने का डर ऐसा है कि लगता है अभी-अभी हूँ, अभी नहीं" लिखकर अपने किस मनोभाव की व्यंजना की है ?

उत्तर–मिश्रजी इस व्यक्तिपरक निबन्ध में यही कहना चाहते हैं कि मानव जब कभी कोई सपना देखता है तो उस सपने को देखने के बाद उससे होश होने के बाद भी वे सपने की बातें चारों तरफ वातावरण में घूमती रहती हैं । इसमें वर्तमान राजनीति के वातावरण का सपने के रूप में चित्रण किया है । वर्तमान राजनीति ऐसी लगती है जैसे हम कोई सपना देख रहे हों, जिसमें आँख खुलने के बाद कुछ भी दिखाई नहीं देता है । ऐसे में राजनीति भी एक सपने के समान है जिसमें लोग कुर्सी के लिये एक-दूसरे को खींच रहे हैं और राजनीति को विनाश के मार्ग की ओर अग्रसर कर रहे हैं । इसलिये आज की राजनीति एक सपने के समान है, जो समाज का शोषण कर रही है । सरकार कब गिर जायेगी, कब किसकी बन जायेगी यह सब सपने के समान है । जिस प्रकार सपने का डर चारों तरफ साये की तरह घूमता रहता है, उसी प्रकार राजनीति भी साये की तरह घूमती रहती है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य सपने के बाद आशंका करता है कि कभी तो मैं हूँ, कभी सोचता है मैं नहीं हूँ । इसी प्रकार का वर्तमान समाज का वास्तविक वातावरण दिखाई देता है ।

प्रश्न 10. व्यक्ति व्यंजक ललित निबन्धों की भाषा-शैली किस प्रकार की होनी चाहिये ?

उत्तर–सामान्य रूप से निबन्धों को वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक रूपों में विभाजित किया जाता है । लेकिन वर्तमान में ललित निबन्धों के नाम से गद्य की एक नवीन विधा विकसित हुई है जिसमें व्यक्तिव्यंजकता को प्रधानता देते हुये उसका लेखक स्वरेगति से किसी भी विशिष्ट विषय को लेकर अपना वस्तुशिल्प अथवा वैशिष्ट्य प्रकट करता है । इस प्रकार के निबन्धों में वैयक्तिक अभिरुचि की प्रधानता होती है । विषय-वस्तु में रोचकता तथा सजीवता लाने के लिये लेखक उसमें लालित्य का संचार भी करता है तथा लोकसंस्कृति के उपकरणों को आधार बनाकर लेखक उसे नूतन रूप प्रदान करता है । स्मृति तथा कल्पना लेखक को इस कार्य में सहायता प्रदान करते हैं । हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति तथा लोकतत्त्वों को लेकर के व्यक्तिव्यंजक ललित निबन्धों की परम्परा को आरम्भ किया था । बाद में विद्या निवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती, विवेकीराय इत्यादि साहित्यकारों ने ललित निबन्धों की इस विधा को आगे बढ़ाया ।

8. लंकाविजय के बाद रामराज

(हरिशंकर परसाई)

लेखक-परिचय–श्री हरिशंकर परसाई का जन्म इटारसी, मध्यप्रदेश के पास जमानी नामक गाँव में 12 अगस्त, 1924 ई. को हुआ । सन् 1949 ई. में इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास की । ये कई वर्षों तक महाविद्यालयों में प्राध्यापक पद पर कार्यरत रहे । इसके बाद इन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन कार्य

प्रारम्भ किया और जीवनपर्यन्त लेखन कार्य करके अपनी आजीविका चलाते रहे । इसीलिए हास्य और व्यंग्य विधा में अत्यन्त लोकप्रिय निबन्धकार के रूप में हरिशंकर परसाई का नाम बड़े आदर से लिया जाता है ।

हरिशंकर परसाईजी की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनकी निबन्ध रचनाएँ हैं जिनमें उन्होंने सामाजिक विसंगतियों, राष्ट्रव्यापी भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी पर अत्यन्त पैने और कठोर व्यंग्य किये हैं । वर्तमानकालिक जीवन व समाज से जुड़ी गतिविधियों का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिस पर परसाईजी ने व्यंग्य न किया हो । समसामयिक युग जीवन के बदलते हुए परिवेश के सन्दर्भ में उन्होंने आज के यथार्थ की ज्वलन्त तस्वीरें खींचने में कोई कसर नहीं छोड़ी । उन्होंने व्यंग्य लेखों के रूप में राजनीतिक षड्यंत्र, सामाजिक बिखराव, सांस्कृतिक ह्रास, धार्मिक अंधविश्वास, साहित्यिक दलबंदियाँ, वैयक्तिक तनाव, मानसिक कुंठाएँ, नैतिक पतन, स्वार्थपरता, थोथे प्रदर्शन, बगुला भक्ति तथा विश्व जीवन आदि विषयों को निरूपित किया ।

इनके निबन्ध अपनी-अपनी बीमारी, पगडंडियों का जमाना, बेईमानी की परत, सदाचार का ताबीज, भूत के पाँव पीछे, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, घायल वसन्त आदि हैं । उनके प्रत्येक निबन्ध में हास्य और व्यंग्य का फबता हुआ पुट रहता है, जो पाठक की मनोवृत्ति को हठात् अपनी ओर खींच लेता है । उनकी पैनी अन्तर्दृष्टि एवं व्यंग्य की चुभन महीन मार करने वाली है । विषयानुरूप भाषाशैली का प्रयोग उनकी मुख्य विशेषता है ।

पाठ-परिचय–"लंकाविजय के बाद रामराज" हरिशंकर परसाई का व्यंग्यात्मक निबन्ध है । इसमें परसाईजी ने निबन्ध के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत किये हैं, जैसे लंका पर विजयश्री श्रीराम ने वानरों की सहायता से प्राप्त की तो वानर सेना ने राम के साथ अयोध्या में प्रवेश किया । वहाँ आकर राम राज्य में अस्थिरता पैदा करने लगे । वहाँ आतंकवाद को बढ़ावा देने लगे । इससे अयोध्यावासी परेशान हो गये । इसके बाद अयोध्यावासी दु:खी होकर रामचन्द्रजी व भरतजी के पास जाते हैं । इस पर रामचन्द्रजी आवेश में आ जाते हैं और उनसे पूछते हैं कि तुम क्या चाहते हो ? इस पर वानर कहते हैं कि लंकाविजय के समय हमने आपका सहयोग किया था, इसलिए आपके राज्य में हमें स्थान व पद चाहिए । राम ने कहा कि पद योग्यता के आधार पर मिलते हैं । तब वानरों ने कहा कि हमारे शरीर के ये घाव ही हमारी योग्यता हैं । राम ने आदेश किया कि कल आकर अपने घावों की गिनती करा देना, उसी के अनुसार पद मिलेगा । वानरों ने अपनी योग्यता को जताने के लिए नकली घाव बनाये । इससे वानरों को राज्य में उच्च पद मिल गये और रामराज्य के स्थान पर वानरराज्य हो गया । राम ने सीता का परित्याग किया तो सीता सहायता कोष खोला गया । उस पैसे को हड़प गये ।

इसमें यह व्यंग्य किया है कि भारत भी लगभग दो सौ वर्षों की गुलामी से परस्पर सहयोग व एकता से स्वतन्त्र हो गया । स्वतन्त्रता सेनानियों ने भारत पर स्वतन्त्र शासन चलाया । धीरे-धीरे देशभक्तों के त्याग व बलिदान पर आधुनिक राजनेता व बनावटी लोग उस राज्य पर शासन करने के लिए अपना अधिकार जताने लगे । उन त्यागवीरों, दानवीरों व कर्मवीरों ने उनकी बनावटी योग्यताओं के आधार पर उनको शासन दे दिया और धीरे-धीरे भारत की शासन व्यवस्था भंग होती जा रही है । आज का राज्य रामराज्य नहीं है, वानरराज्य के समान है जिसमें कई प्रकार के भ्रष्टाचार फैले हुए हैं । सारे के सारे नेता भ्रष्टाचार में लिप्त

हो रहे हैं, कभी यूरिया घोटाला, कभी चारा घोटाला, कभी बोफोर्स तोप घोटाला, चीनी घोटाला, बैंक घोटाला आदि कोष सरकारें हड़पती जा रही हैं। इस कारण से जैसे बन्दर किसी वस्तु का महत्व नहीं समझता है, वह तो अपने आभूषणों को भी तोड़कर फैंक देता है उसी प्रकार आज के राजनेतागण राजनीति तो समझते नहीं हैं, अपनी-अपनी गन्दी राजनीति व भ्रष्टाचार से देश को पतन के मार्ग की ओर अग्रसर कर रहे हैं। देश के नाम पर कोई कार्य नहीं करते अपितु उसे लूटने का प्रयास करते जा रहे हैं।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

उत्तर–(क) श्रद्धा के आवरण में सत्य को नहीं छिपाना चाहिये।

(ख) मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शान्त मुख पर भी चिन्ता और उद्वेग के भाव उभरने लगे।

(ग) शासन का कार्य योग्यतम व्यक्तियों को ही सौंपा जाना चाहिये।

(घ) इस वर्णित प्रसंग को कहने और सुनने वाले को पाप लगता है।

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

2. अयोध्या लौटकर वानरों ने क्या किया ?

(क) उत्पात मचाया (ख) सेवाधर्म निभाया

(ग) नागरिकों को सहयोग दिया

(घ) अनुशासन का पालन किया। **उत्तर–(क)**

3. भरत से वानरों की शिकायत सुनकर राम ने क्या निर्णय किया ?

(क) उन्हें देश निकाला दे दिया जाय

(ख) उनकी सेवा की कीमत चुकाई जाय

(ग) शासन में उन्हें उचित भागीदारी मिले

(घ) उनके चरित्र की सही जाँच की जाय। **उत्तर–(ख)**

4. राम ने वानरों से क्या कहा ?

(क) मुझे खूब लज्जित करो

(ख) अपने-अपने घरों को लौट जाओ

(ग) मुफ्त की खाते फिरो

(घ) प्रजा के सामने आदर्श उपस्थित करो। **उत्तर–(घ)**

5. यह निबन्ध किस प्रकार का है ?

(क) हास्य-व्यंग्यात्मक (ख) विचारात्मक

(ग) भावात्मक (घ) व्यक्तिपरक। **उत्तर–(क)**

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. लंका विजय के बाद 'रामराज्य' शीर्षक निबन्ध द्वारा लेखक किन बिन्दुओं पर व्यंग्य करना चाहता है ?

उत्तर–परसाईजी निबन्ध के क्षेत्र में व्यंग्य लेखों के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने लंका विजय के बाद रामराज्य निबन्ध में वर्तमान शासन व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

इसमें यह बताया गया है कि रामराज्य के स्थान पर जैसे वानर राज्य फैल गया वैसे ही स्वतन्त्र राष्ट्र के स्थान पर भ्रष्ट राष्ट्र बन गया। सभी राजनेता अपना अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। गरीबों के लिये नये-नये कोष खोले जाते हैं। जनता तक वह कोष पहुँचते-पहुँचते राजनेता इनके नाम पर हड़प जाते हैं। जनता में शान्ति स्थापित करने के स्थान पर अशान्ति को व आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं। जनता का शोषण करना उनका कर्त्तव्य हो गया है। यही कारण है कि समाज में व पूरे राष्ट्र में हत्याएँ, अपहरण, दहेज, बलात्कार आदि की वारदातें इन्हीं के कारणों से दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं और राष्ट्र पतन के मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है। जनता की सहायता के स्थान पर जनता को लूटने का, शोषण करने का प्रयारा तेज कर रहे हैं। समाज में कोई भ्रष्टाचार फैल रहा है उसमें राजनेताओं का किसी न किसी रूप में हाथ है। इसलिये यह व्यंग्य किया गया है कि आज देश में रामराज्य होना चाहिए जिसके स्थान पर वानर राज्य हो गया है।

प्रश्न 2. यह कहना कहाँ तक उचित है कि लेखक ने लंकाविजय के संदर्भ को हमारे स्वातंत्र्य संग्राम की विजय के साथ जोड़कर उसके माध्यम से आजकल की राजनीतिक चालों पर पैने व्यंग्य किये हैं ?

उत्तर–राम ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में जोड़कर लंका पर विजय प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण भारतीयों को एकता के सूत्र में जोड़कर नये रूप से संघर्ष किया और रावण पर विजय को प्राप्त किया। इसके बाद राम राज्य की प्रतिस्थापना की। इसके बाद व्यंग्य के रूप में कहा गया कि वानर सेना राम के साथ अयोध्या आई। वहाँ आकर अपने सहयोग का ऋण माँगने के लिए असामाजिकता का सहारा लिया और रामराज्य के स्थान पर वानर राज्य फैल गया और समाज अनेक रूपों में आतंकित हुआ। इसी प्रकार भारत भी दो सौ वर्षों से अंग्रेजों का उपनिवेश राष्ट्र रहा। भारत में इसका कारण अनेकता में बँटे हुए होना और जातिवाद की दीवार थी।

स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, झाँसी बाई, सुभाषचन्द्र बोस, ताँत्या टोपे, भगतसिंह आजाद, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने जन्म लिया और भारतवर्ष को एकता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास किया है। सबको समानता का अधिकार दिया। इसी कारण भारत इनके सहयोग से स्वतन्त्रता प्राप्ति में सफल हुआ। हम इनके त्याग व बलिदान को नहीं भूल सकते हैं। वर्तमान भारत स्वतन्त्र राष्ट्र तो है किन्तु राजनेता उनके कर्मवीरों व बलिदानी देशभक्तों के नाम पर डींग हाँकते हैं और राष्ट्र का विकास करने के स्थान पर उसको पतन के कगार पर पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। वर्तमान में सभी पार्टियों के राजनेता देश का भला नहीं चाहते अपितु अपना अपना शासन चलाकर अपने स्वार्थों को सिद्ध करते हैं। एक दूसरे का सहयोग करने की बजाय उनमें कमियाँ निकालने का प्रयास करते हैं। एक दूसरे के विकास को देखकर ईर्ष्या भावना को बल देते हैं। जो वास्तव में राष्ट्र की सेवा करते हैं उनका सम्मान करने की बजाय उनको अपमानित करते हैं। इस कारण स्वतन्त्र राज्य रामराज्य के समान होना चाहिए किन्तु आज का राष्ट्र व उसकी राज-व्यवस्था वानर राज्य के समान है। इसी कारण यह कहना उचित होगा कि लंका विजय के बाद को परसाईजी ने स्वतन्त्र भारत की वर्तमान राजनीति को व्यंग्य के रूप में जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रश्न 3. पाठ में वर्णित 'वानर सेना' किसकी प्रतीक है और उसकी माँगों के पीछे कौनसी राजनीति छुपी हुई है ?

उत्तर–लंका विजय के बाद रामराज्य पाठ में ''वानर सेना'' वर्तमान राजनीति की शासन व्यवस्था का प्रतीक है । इसमें यह भावना छिपी हुई है कि जैसे वानरों ने राम की सहायता की तो इन्होंने राम से अपने सहयोग के अनुसार पद माँगे और रामराज्य को वानर राज्य बनाकर बर्बाद किया ठीक उसी प्रकार वर्तमान में हमारे राष्ट्र की राजनीति में देखने को मिल जाता है । कोई राजनेता थोड़ा-सा काम क्या कर देता है वह अपने आपको सब कुछ समझ बैठता है और उच्च पद प्राप्त करने की माँग कर बैठता है और अपने-अपने स्वार्थों को सिद्ध करने में तुले रहते हैं । एक बार उच्च पद पर पहुँचने के बाद वे भ्रष्टाचार को अपना आधार बनाते हैं और देश का शोषण करते हुए देश की जनता पर अत्याचार करते हैं और देश को एकता के सूत्र में जोड़ने के बजाय अपने-अपने अलग-अलग गुट बनाकर देश के विकास की शक्ति को तोड़ने का प्रयास करते हैं । यही कारण है कि देश में रामराज्य होने की बजाय वानर राज्य का बोलबाला है । रामराज्य का तात्पर्य होता है प्रजा की सन्तुष्टि । उसमें किसी को किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं होता किन्तु वानर राज्य का तात्पर्य होता है जिससे प्रजा को कई प्रकार की कठिनाइयों से युक्त होना पड़े और प्रजा को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़े । वैसे देखा जाय तो प्रजा में वानर राज्य का ही प्रभाव बढ़ा हुआ है और वानर सेना की तरह वे जनता का शोषण करते हैं । भ्रष्टाचार के नये-नये तरीके अपनाते जा रहे हैं ।

प्रश्न 4. परसाईजी के इस व्यंग्यात्मक निबन्ध में अतीत और वर्तमान में किस प्रकार की सुसंगति अथवा समानता बैठाई गई ?

उत्तर–परसाईजी व्यंग्यकार लेखक जिन्होंने अतीत की स्मृतियों को वर्तमान की सच्चाइयों से जोड़ने का प्रयास किया है । रामराज्य की सुसंगति, समानता को स्वतन्त्रता संग्राम व स्वतन्त्रता से जोड़ा गया है । वानर से नाया वानर राज्य में वर्तमान राजनीति की शासन व्यवस्था के समान समानता को जोड़ने का प्रयास किया गया है । राम राज्य के समान जब भारत में एकता, समानता व अपसी सहयोग की भावना प्रवृत्त हुई तो देश स्वतन्त्र हुआ किन्तु जैसे रामराज्य होने के बाद वानर सेना ने अपने सहयोग की कीमत माँगनी चाही तो उसी प्रकार वर्तमान राजनीति में भी राजनेतागण जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया हो या न लिया हो वे राजनीति में वानर राज्य की स्थापना करते हैं । वानरों के समान प्रजा में शान्ति बढ़ाने की बजाय अशान्ति व आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं । वानर सेना ने अपने स्वार्थों के चक्कर में अनेक विभाग व कोष खुलवाये और उनको हड़प गये वैसे ही वर्तमान राजनीति में भी राजनेता अपने-अपने स्वार्थों हेतु नये-नये कार्यों के लिए नई-नई योजनाओं का निर्माण करके उनके लिए नये-नये विभाग खुलवाये जाते हैं । सहायता कोष पास किया जाता है । काम होता ही नहीं और राजनेता उसको बीच में ही हड़प जाते हैं और योजना पूरी नहीं होती है और जनता का शोषण किया जाता है । इस प्रकार वानर राज्य व आज के राज्य में समानता अंकित की गई है ।

प्रश्न 5. इस निबन्ध में प्रयुक्त घटना-विवरणों के द्वारा आज की प्रशासनिक अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचारिता के किन-किन बिन्दुओं पर तीखे व्यंग्य बाण छोड़े गये हैं ?

उत्तर–हरिशंकर परसाईजी ने ''लंका विजय के बाद रामराज्य'' व्यंग्यात्मक निबन्ध में कहा है कि आज की प्रशासनिक अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार इतनी मात्रा में फैल

गया है जिसने ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया है जिसमें देश की बुराइयाँ ही नहीं अपितु सम्पूर्ण अच्छाइयाँ भी भस्मसात हो गई हैं। वर्तमान में यदि हम देखें तो ऐसा ज्ञात होता है कि केन्द्रीय सरकार की शासन व्यवस्था इतनी भ्रष्ट है कि उसमें चाहे किसी भी पार्टी को देखें उसमें भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है। सम्पूर्ण भारतवर्ष भ्रष्टाचार के मार्ग पर प्रशस्त है। केन्द्रीय सरकार देश में, राज्यस्तरीय सरकार राज्यों के भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रही हैं क्योंकि ये राजनेता धार्मिक व सामाजिक कार्यों को भी राजनीति से जोड़ते जा रहे हैं और भ्रष्टाचार प्रत्येक विभाग में विनाशक शक्ति के रूप में पनप रहा है। प्रशासनिक अधिकारी भी अपने-अपने विभागों में भ्रष्टाचार से लिप्त हैं। कोई भी कार्य बिना रिश्वतखोरी या मुनाफाखोरी के नहीं हो सकता। वर्तमान राज्य में ईमानदारी को कोई स्थान नहीं है। चाहे रेलवे विभाग हो, कृषि विभाग हो, सिंचाई विभाग हो, आपूर्ति विभाग हो, स्वास्थ्य विभाग हो, शिक्षा विभाग हो, न्यायालय विभाग हो सभी में भ्रष्टाचार के अलावा कोई कार्य होना ही नहीं है। सभी विभागों के अधिकारी कालाधन बटोरकर कालाबाजारी को बढ़ावा दे रहे हैं। आज की राजनीति व प्रशासनिक विभाग में राम की रीति-नीति समाप्त हो गई है। सभी वानर राज्य की तरह देश को सहयोग के नाम पर बर्बादी के मार्ग की ओर प्रशस्त कर रहे हैं। देश के राजनेताओं, प्रशासनिक अधिकारियों व अनेक विभागों की रगों में भ्रष्टाचार रूपी खून दौड़ रहा है। ईमानदारी के कार्यों व मार्गों पर तख्ती लग गई। सभी कुर्सी के नीचे से कार्य चल रहे हैं। इसलिए समाज में अशान्ति, आतंकवाद, हत्या, अपहरण, दहेज प्रथा, आपसी टकराव आदि कुप्रथाएँ प्रबल होती जा रही हैं। इस प्रकार देश के विनाश के मार्ग भी प्रशस्त हो रहे हैं। नौकरी आदि कार्यों जिनमें प्रशासनिक पद छोटे-मोटे पदों पर भ्रष्टाचार से ही लिप्त हैं। दिखावे के रूप में तो वे अपने आपको ईमानदारी की तस्वीर प्रेषित करते हैं। उसकी आढ़ में वे दिनों दिन भ्रष्टाचार को ही बढ़ावा दे रहे हैं। इनके कारण से राष्ट्र गर्त की ओर गमन कर रहा है।

प्रश्न 6. ''परसाईजी का व्यंग्य तिलमिलाने वाला होता है।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उत्तर–हरिशंकर परसाई व्यंग्य लेखकों में श्रेष्ठतम हैं। उनके व्यंग्य अत्यन्त तिलमिलाने वाले होते हैं। उनको पढ़ते ही जिन पर व्यंग्य किये जाते हैं वे हड़बड़ा कर तिलमिलाने लगते हैं। जैसे लंका विजय के बाद रामराज्य में वर्तमान राजनीति व प्रशासनिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है। इसे पढ़ते ही वे तिलमिला उठते हैं क्योंकि किसी व्यक्ति को उसकी सच्चाई का बोध होता है; तो उसे गुस्सा आये बिना नहीं रहता है। इनके शब्दरूपी बाण उनके सीने में सीधा आघात पहुँचाते हैं। जैसे आज के राज्य को वानर राज्य कहा है जो हीनता का प्रतीक है और प्रशासनिक व्यवस्था को वानर सेना या राज्य द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएँ कहा गया जिससे वे स्वयं में उस योजना को हड़प जाते हैं जिससे उन पर तीखा व्यंग्य किया गया है इसलिए उनके व्यंग्य को सुनकर व पढ़कर व्यक्ति चाहे कितना ही धैर्यशाली क्यों न हो ? वह तिलमिलाने वाला प्रतीत होता है। उस समय तो वह ऐसा महसूस करता है कि वह आत्महत्या करने पर उतारू हो जाये। लेकिन आजकल के राजनेता व प्रशासनिक अधिकारी इतने नीच हो गये हैं जिनको कुछ भी कहा जाये, वे अपनी रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचारी के मार्ग को नहीं छोड़ते हैं। वे इतने बेशर्म होते हैं कि थोड़ी देर

तो तिलमिलाते हैं और बाद में वैसे के वैसे हो जाते हैं और भ्रष्टाचार का अपना आरोप दूसरों पर थोपते रहते हैं। अलक्ष रूप से दूसरों का शोषण करते रहते हैं। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि परसाईजी का लेख तिलमिलाने वाला होता है। फिर भी इन राजनेताओं व प्रशासनिक अधिकारियों पर कोई असर नहीं होता है। उनकी नीचता की भी हद होती है।

प्रश्न 7. व्यंग्यात्मक निबन्धों में कौन-कौनसी विशेषताएँ होनी चाहिए ?

उत्तर–व्यंग्यात्मक निबन्धों में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

1. व्यंग्यात्मक निबन्ध गद्य रचना का छोटा रूप होना चाहिए।
2. व्यंग्यात्मक निबन्ध में लेखक का निजीपन और व्यक्तित्व झलकता है।
3. व्यंग्यात्मक निबन्ध अपूर्णता और स्वच्छन्दता के रहते हुए भी वह स्वतः पूर्ण होता है। इसमें लेखक की स्वच्छन्दता, उच्छृंखलता नहीं है, उसकी अनियमितता में भी एक नियम होता है, उसकी अव्यवस्था में भी एक व्यवस्था है।
4. व्यंग्यात्मक निबन्ध में चुटीले व्यंग्य होने चाहिये जो मानव चरित्र निर्माण के लेए सार्थक होते हैं।
5. व्यंग्यात्मक निबन्ध प्रतीकात्मक होने चाहिए जिससे प्रतीकों के माध्यम से समझाया जा सके।
6. इन निबन्धों में लोकोक्तियुक्त कहावतों का प्रयोग होना चाहिए।
7. ऐसे निबन्धों में प्रत्यक्ष व्यंग्य न करके अप्रत्यक्ष में व्यंग्य करना चाहिए।
8. व्यंग्यात्मक निबन्ध शिक्षाप्रद होने चाहिए।

प्रश्न 8. व्यंग्यात्मकता की दृष्टि से इस निबन्ध का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर–हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित व्यंग्यात्मक निबन्ध "लंका विजय के बाद रामराज्य" में आज की राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है, जैसे राम ने वानरों की सहायता से लंका पर विजय प्राप्त की। इसके बाद रामचन्द्रजी के अयोध्या लौटने पर वानर भी उनके साथ आये। लंका विजय में की गई सहायता के लिए अपना स्थान पाना चाहते हैं। इस कारण से रामराज्य के स्थान पर वानर राज्य फैल जाता है। उसके बाद में राज्य में भ्रष्टाचार फैलता है और जनता को लूटने के लिए योजनाएँ बनाकर हड़प जाते हैं, उसी प्रकार आज की राजनीति पर व्यंग्य किया गया है। वर्तमान में राजनेता चुनाव लड़ने व जीतने में पार्टियों का सहयोग करते हैं फिर उच्च पदों को प्राप्त करने की लालसा रखते हैं और फिर उच्च पदों को प्राप्त करके जनता के सहयोग की योजनाएँ बनाते हैं और जनता को लूट लेते हैं अर्थात् जनता का राहत-कोष राजनेता व प्रशासनिक अधिकारी बीच में ही हड़प जाते हैं। इस प्रकार वानर राज के रूप में जनता को परेशान करते हैं और शोषण के नये-नये तरीके ढूँढ़ते हैं। अपने-अपने स्वार्थों के लिए राजनीति से जोड़ने का प्रयास करते हैं और मानवीय मूल्यों का हनन करते हैं। प्रशासनिक अधिकारी भी भ्रष्टाचार में लिप्त रहते हैं। वे बिना रिश्वतखोरी के किसी कार्य को करते ही नहीं हैं अपितु कार्यों में बाधाएँ उत्पन्न करते रहते हैं।

9. आकाशदीप

(जयशंकर प्रसाद)

लेखक-परिचय–महाकवि आधुनिक साहित्यकार जयशंकर ''प्रसाद'' का जन्म काशी के सुप्रसिद्ध सुंघनी साहू परिवार में 30 जनवरी, 1889 ई. को हुआ । इन्होंने बचपन से ही बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों की यात्राएँ कीं जिसका असर इनकी मानसिकता पर पड़ा । 1910 ईस्वी में इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में लिखना प्रारम्भ किया ।

प्रसादजी का व्यक्तित्व और कृतित्व अद्भुत एवं असाधारण कोटि का है । प्रसाद जी का अध्ययन एवं चिन्तन अत्यन्त व्यापक और गहन था । इसी कारण इसी प्रतिभा से युक्त होकर रचनाएँ लिखीं । उनकी रचनाएँ मौलिकता एवं संवेदनाओं से युक्त हैं । उनका ज्ञान-कोष सांस्कृतिक परम्पराओं से युक्त है । उनकी साहित्यिक रचनाएँ वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को प्रेरणा देने में सशक्त कहलाती हैं । इनके लेख बहुआयामी रहे हैं । इनकी कहानियाँ निम्न हैं—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, इन्द्रजाल आदि । इन कहानियों में व्यापकता एवं गम्भीरता का समन्वय है । इनको छायावाद व रहस्यवाद का कीर्तिस्तम्भ माना जाता है । इनको प्रसिद्धि कामायनी महाकाव्य के आधार पर मिली । इनके अनेक काव्य आँसू, लहर, महाराजा का महत्त्व, प्रेम पथिक आदि हैं ।

कहानी का परिचय–कहानी नायक बुद्धगुप्त है । उसकी नायिका चम्पा है । एक बार महानाविक बुद्धगुप्त, चम्पा व अन्य लोगों को बन्दी बना लेते हैं । वे जलयान में उन्हें अन्यत्र कहीं ले जा रहे थे । दोनों ने अपने प्रयासों से छुटकारा प्राप्त किया । इसके बाद महानाविक पर विजयश्री प्राप्त करके उस नाव पर अपना अधिकार कर लेते हैं । इसके बाद उस नाव का मालिक बुद्धगुप्त बन जाता है । वे नाव के द्वारा यात्रा करते हैं और अज्ञात स्थल की ओर रवाना हो जाते हैं । इसके बाद वे एक स्थान पर पहुँचते हैं । उस स्थान का नाम वे चम्पा नगरी रखते हैं । वहीं पर वे सभी रहते हैं । वहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्थाएँ बुद्धगुप्त व चम्पा करती हैं । चम्पा वहाँ की राजकुमारी होती है । उन दोनों को एक-दूसरे के प्रति प्रेम हो जाता है, किन्तु चम्पा बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती है । चम्पा बुद्धगुप्त को अपने पिता के बारे में बताती है कि उसके पिता किसी नाव पर नौकरी करते थे । जब वे नौकरी पर जाते थे तब मेरी माँ उनके आने तक दीपक पेड़ पर रख देती थी । वह दीपक आकाशदीप के समान चमकता था । एक दिन मेरे पिता की हत्या कर दी । उस मजबूरी के कारण मुझे यान पर नौकरी करनी पड़ी । मैं अपने पिता की हत्यारे के तलाश में हूँ और वह बुद्धगुप्त को ही उसका हत्यारा समझती है । वह चम्पा भी अपनी माँ के समान दीपक जलाती है । उसकी मजाक बुद्धगुप्त उड़ाता है । वह उसे बुरा मानती है और बुद्धगुप्त को घृणा की दृष्टि से देखती है । वे एक दूसरे के प्रेमी हो जाते हैं फिर भी चम्पा के मन में उसके प्रति बदले की भावना रहती है । बुद्धगुप्त उससे अपने प्रेम का इजहार करता है किन्तु चम्पा उसे इन्कार कर देती है । चम्पा प्रतिदिन पेड़ पर आकाशदीप जलाती रहती है । इसलिए इस कहानी का नाम आकाशदीप रखा गया ।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. उस संकट में भी दोनों बन्दी खिल-खिलाकर हँस पड़े। क्यों ?
   (क) मिलन सुख के कारण (ख) मुक्त होने की खुशी से
   (ग) परस्पर सहयोग की सम्भावना से
   (घ) एकाकी जीवन से छुटकारा पाने के लिये। **उत्तर**–(ख)
2. चम्पा ने जलदस्यु के क्षतों को कोमल करों से वेदनाविहीन कर दिया। क्यों ?
   (क) प्रेमवश (ख) संरक्षण का आधार देकर
   (ग) मानवीय संवेदना से द्रवित होकर
   (घ) भावी सुख की कल्पनावश। **उत्तर**–(ग)
3. चम्पा का बुद्धगुप्त के प्रति आकर्षण क्यों बढ़ा ?
   (क) जवानी का जोश देखकर (ख) विवाह करने की भावनावश
   (ग) शत्रु को पराजित करने के कारण
   (घ) नयी जिन्दगी की शुरूआत करने के लिए। **उत्तर**–(क)
4. बुद्धगुप्त चम्पा से क्या चाहता था ?
   (क) वह उस पर भरोसा करे (ख) उसके साथ स्वदेश लौटे
   (ग) उलझनों में न फँसे (घ) अतीत को भुला दे। **उत्तर**–(क)
5. चम्पा बुद्धगुप्त के साथ समझौता क्यों नहीं कर सकी ?
   (क) वह उसे पितृघाती समझती थी (ख) मन का सन्तुलन खो चुकी थी
   (ग) वह निरीह और भोली थी
   (घ) वह संघर्षों से हार चुकी थी। **उत्तर**–(क)
6. बुद्धगुप्त अकेला ही स्वदेश क्यों लौटा ?
   (क) वह चम्पा को भूलना चाहता था
   (ख) उसके लिये दूसरा कोई चारा नहीं था
   (ग) वह चम्पा का मन नहीं जीत सका था
   (घ) वह अपनी दस्युवृत्ति से ऊब चुका था। **उत्तर**–(ग)

(आ) वस्तुपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. 'आकाशदीप' कहानी का आरम्भ किस प्रकार की अप्रत्याशित घटना से किया गया है ?

उत्तर–एक पोताध्यक्ष मणिभद्र था जिसने जलदस्युओं को गिरफ्तार कर रखा था। उसने सम्पूर्ण जल प्रान्त के प्राणियों को बन्दी बना लिया था। उसी क्रम में जलदस्यु बुद्धगुप्त व चम्पा को भी बन्दी बना लिया। चम्पा अपने पिता के खूनी की तलाश में थी। बुद्धगुप्त ने पोताध्यक्ष व महानाविक को मारकर उस पोत पर अधिकार कर लिया। वे मणिभद्र से स्वतन्त्र होना चाहते थे। उस मणिभद्र के पास ही चम्पा के पिता नौकरी करते थे। वह बुद्धगुप्त को ही अपने पिता का हत्यारा समझती थी। यही अप्रत्याशित घटना आकाशदीप के प्रारम्भ में की गई है। मणिभद्र के 10 सैनिक हैं। उन्होंने चम्पा और बुद्धगुप्त को बन्दी बना

रखा था। दोनों परस्पर मेहनत से व बचन से मुक्त होते हैं और पोत पर अपना अधिकार कर लेते हैं। दोनों अप्रत्याशित स्थान पर जाकर चम्पा नामक नगरी बसाते हैं। कुछ जीवन वहीं बिताते हैं। दोनों अन्त तक नहीं मिल पाते हैं क्योंकि चम्पा बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती है और बुद्धगुप्त को स्वीकार नहीं करती है। वह इतना होते हुए भी बुद्धगुप्त को आकाशदीप के रूप में मानती है। इस कहानी में यह अप्रत्याशित घटना वर्णित की गई है।

प्रश्न 2. बुद्धगुप्त व चम्पा की मानसिकता का अन्तर्द्वन्द्व स्पष्ट कीजिए।

उत्तर-'आकाशदीप' कहानी में प्रसादजी ने चम्पा व बुद्धगुप्त को नायिका एवं नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। पोताध्यक्ष मणिभद्र प्रहरी है। वह चम्पा के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह उसका विरोध करती है तो उसे बन्दी बना लेता है। उसी प्रकार बुद्धगुप्त को भी जलदस्यु समझकर बन्दी बना लेता है। दोनों अपने परिश्रम से बन्दी होने से मुक्त हो जाते हैं। इसके बाद पोत पर अधिकार कर लेते हैं। चम्पा बुद्धगुप्त पर प्रसन्न हो जाती है किन्तु जलदस्यु बुद्धगुप्त को अपना शत्रु समझती है। वे चम्पा नामक नगरी बसाते हैं। उन दोनों में आत्मीयता हो जाती है। बुद्धगुप्त चम्पा को प्राप्त करने के अनेक प्रयास करता है। चम्पा भी उससे प्यार करने लगती है। लेकिन उसे जैसे ही वास्तविकताओं का आभास होता है, वह उससे दूर हट जाती है। बुद्धगुप्त उसे सभी प्रकार से स्पष्टीकरण देता है। वह हर बात को समझते हुए भी उसके पक्ष में नहीं होती है, उसे अपना शत्रु ही समझती है। उससे बदला लेने की भावना उसके मन में समाये रहती है। उसकी सहेलियाँ उसे कई प्रकार से बुद्धगुप्त के बारे में समझाती हैं। प्रेम तो उसके मन में भी होता है किन्तु वह उससे अलग ही रहना चाहती है। अन्तिम समय में जब बुद्धगुप्त वहाँ से चलने के लिए व अपने स्थान पर जाने के लिए कहता है तो उसे भी साथ चलने के लिए कहता है। वह उसके साथ जाने से इन्कार कर देती है और कहती है कि मैं तो यहाँ ही रहूँगी और इसी बस्ती की सेवा करती रहूँगी और आकाशदीप के समान यहाँ चमकती रहूँगी। तुम अपने स्थान पर जाओ। मुझे यहाँ अकेला छोड़ दो। इस प्रकार की बुद्धगुप्त व चम्पा की मानसिकता थी।

प्रश्न 3. उपर्युक्त दोनों पात्रों के मिलन की क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ हुई और वे किस प्रकार एक दूसरे के निकट आ गये?

उत्तर–जलदस्यु होने के कारण पोताध्यक्ष ने बुद्धगुप्त को बन्दी बना लिया। उसी प्रकार चम्पा भी माता की मृत्यु के बाद पिता के साथ पोत पर रहती थी, उस मणिभद्र ने चम्पा के पिता की हत्या कर दी और एक दिन चम्पा के साथ दुर्व्यवहार किया किन्तु चम्पा ने उसका विरोध किया और वेश बदलकर बुद्धगुप्त के साथ बन्दीगृह में डाल दिया। वहाँ नाव के हिलोरे आने के कारण बुद्धगुप्त व चम्पा एक दूसरे से टकराने लगे। दोनों ने एक-दूसरे को स्वतन्त्र कराने की बात की। दोनों ने एक-दूसरे के बन्धन काट दिये और स्वतन्त्र हो गये। वहाँ महानाविक आ गया। उसने उनको फिर से बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। बुद्धगुप्त व महानाविक में युद्ध हुआ। बुद्धगुप्त ने चम्पा की सहायता से महानाविक को पराजित किया। इसके बाद दोनों प्रसन्न होकर अज्ञात लक्ष्य की ओर रवाना हो गये। वहाँ जाकर उन्होंने चम्पा नगरी बसायी। वहाँ रहते हुए लम्बा समय गुजर गया। दोनों ने एक दूसरे को व्यथाएँ सुनाईं और एक दूसरे से सहायता व विचार-विमर्श करते हुए एक-दूसरे के निकट आते चले गये लेकिन दोनों ने दूरियाँ बनाये रखीं। दोनों में प्रेम तो हो गया किन्तु

चम्पा के मन में बुद्धगुप्त के प्रति प्रतिशोध की भावना थी । इसलिए वह उससे प्रेम करती हुई भी प्रेम प्रकट नहीं करती । वह उसकी याद में आकाशदीप जलाती लेकिन बुद्धगुप्त उसके आकाशदीप का तिरस्कार करता रहता है । चम्पा को यह अत्यन्त बुरा लगता है । कहानी के अन्त तक भी वे दोनों एक दूसरे से एक नहीं हो पाते हैं । चम्पा के मन में वैमनस्यता की भावना जाग्रत ही रहती है ।

प्रश्न 4. कहानी में वर्णित घटनाओं की पाँच वर्ष बाद क्या परिणति हुई ?

उत्तर–बुद्धगुप्त व चम्पा बन्दी पद से मुक्त होकर एक अज्ञात स्थल पर पहुँचते हैं । वहाँ रहते हैं । वहाँ का प्रकृति सौन्दर्य आकर्षित करने वाला है । चम्पा प्रतिदिन दीपक जलाकर प्रकाश करती रहती है । उसकी कामना होती है कि उसका दीपक आकाश दीपों के समान झिलमिलाए किन्तु ऐसा असंभव था । प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर चम्पा भावातिरेक हो जाती है । उसकी सहेलियाँ श्यामा व जया बुद्धगुप्त के आने के बारे में पूछती हैं किन्तु वह उसके बारे में कोई उत्तर नहीं देती है । इतने में ही बुद्धगुप्त उसकी पीठ पर हाथ रख देता है । ''चम्पा आश्चर्यचकित हो जाती है ।'' वह आकाशदीप जलाती रहती है । दोनों में वार्तालाप होता है । बुद्धगुप्त को चम्पा कहती है कि अब तो तुम मुझे मुक्त कर दो । तुम्हारे पास सब कुछ हो गया है । बुद्धगुप्त कहता है कि हे चम्पा ! हम आराम से रह सकते हैं । तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो । चम्पा कहती है कि तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी है लेकिन तुम भगवान के नाम व मेरे आकाशदीप पर हँसी उड़ाते हो । अपने माता-पिता की पुरानी बातें याद दिलाकर उसे समझाने का प्रयास करती है कि मैं आकाशदीप क्यों जलाती हूँ ? और उसके पिता की जलदस्यु के द्वारा हत्या कर दी जाती है और उसे ही जलदस्यु समझकर उस पर क्रोध करती है । फिर कुछ समय व्यतीत होता जाता है । साधारण समय गुजरता है । प्रकृति सौन्दर्य को देखकर दोनों एक दूसरे के प्रेम में खिंचे रहते हैं । दोनों एक दूसरे की भावनाओं में बह जाते हैं । चम्पा फिर क्रोध में आ जाती है, वह उसे कहती है कि तुम मुझे निस्सहाय एवं कंगाल मत समझो । बुद्धगुप्त कहता है कि मैं तुम्हारे पिता का हत्यारा नहीं हूँ । वह यही कहती है कि मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकती । एक दिन वह फिर अपनी भावनाएँ उसके सामने रखता है । वह यही कहती है कि ये तो मिट्टी के समान हैं । मेरे में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है । तब वह कहता है कि तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा । क्योंकि यहाँ रहकर अपने आप पर नियन्त्रण नहीं कर सकता । तुम भी यहाँ अकेली क्या करोगी ? साथ चलो । वह जाने से इन्कार कर देती है और कहती है कि मैं यहीं लोगों की सेवा करूँगी और आकाशदीप के समान जलती रहूँगी ।

प्रश्न 5. चम्पा के मन में ऐसी कौनसी उलझन की गाँठ पड़ गई थी जिसने उसे बुद्धगुप्त के साथ प्रणय-बंधन से रोका ?

उत्तर–चम्पा के पिता जलपोत पर कार्य करते थे । माता की मृत्यु के बाद चम्पा भी पिता के साथ ही रहती थी । एक दिन उसके पिता की किसी जलदस्यु ने हत्या कर दी और मणिभद्र ने जलदस्यु के रूप में बुद्धगुप्त को जलदस्यु के रूप में बन्दी बना लिया । इसी कारण वह जलदस्यु बुद्धगुप्त को अपने पिता का हत्यारा समझती थी, यही उसकी उलझन थी, यही उसके मन में गाँठ पड़ी हुई थी कि उसके पिता की हत्या उसने की है किन्तु उसके दूसरे साथी ने उसकी हत्या की थी । उसने उसे कई बार समझाने का भी प्रयास

किया; किन्तु उसकी उलझन समाप्त नहीं हुई । हमेशा उसको पिता का कातिल ही समझती रही ।

प्रश्न 6. बुद्धगुप्त की किस प्रकार की दस्युवृत्ति की कल्पना कर चम्पा घृणा करने लगी ?

उत्तर–किसी जलदस्यु ने उसके पिता की हत्या कर दी थी, इसलिए वह बेसहारा हो गई । जलदस्यु बुद्धगुप्त ने उसकी रक्षा की, उसके लिए नगरी बसायी । उसके लिए सब कुछ किया । उससे प्यार किया फिर भी वह अन्त तक उसे अपने पिता का कातिल समझती रही और वह उसके आकाशदीप की हँसी उड़ाता था एवं भगवान का उपहास करता था । इसका सबसे मुख्य कारण तो वह अपने पिता का हत्यारा समझती थी । इसीलिए चम्पा बुद्धगुप्त जलदस्यु से घृणा करती थी और जीवनभर प्रेम होते हुए भी घृणा की दृष्टि से उसका उपहास किया ।

प्रश्न 7. प्रेम और घृणा के अन्तर्द्वन्द्व को ध्यान में रखते हुए चम्पा के जीवन का मनोविश्लेषण कीजिए ।

उत्तर–चम्पा को जलदस्यु बुद्धगुप्त ने पोताध्यक्ष मणिभद्र से मुक्त कराया और उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाकर निवास कराया । जिस स्थान का नाम चम्पा नगरी रखा गया वहाँ बुद्धगुप्त ने उसे सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध कराईं । उसके मन में चम्पा के प्रति प्रेम व सौहार्द भावना बढ़ती गई । उसने इसका इजहार भी किया, किन्तु चम्पा ने उसे प्रेम करते हुए भी अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह उसे अपने पिता का हत्यारा समझती थी । प्रेम के रूप में वह उसे आकाशदीप के समान समझती थी । उसकी पूजा-अर्चना करती थी किन्तु जब उसे अपने पिता की याद आती तो वह अत्यन्त दु:खी होकर विचलित सी हो उठती थी । अन्तर्द्वन्द्व के रूप में वह उससे प्रेम करने की बजाय घृणा करती थी । बुद्धगुप्त ने उसे कई बार स्पष्टीकरण भी दिया कि उसने उसके पिता की हत्या नहीं की है । किसी दूसरे जलदस्यु ने उसके पिता की हत्या की है फिर भी उसको यह विश्वास था कि ऐसा नहीं हो सकता । यह स्वार्थी है, हो सकता है कि जैसे मेरे पिता की हत्या की है उसी प्रकार हो सकता है कि मेरी भी हत्या कर दे । उसके मन में उसके प्रति प्रेम होते हुए भी घृणा के बीज अंकुरित होते रहते हैं । कहानी के अन्त तक वह उसे आकाशदीप तो मानती है किन्तु प्रत्यक्ष रूप से उसके प्रति प्रेम को प्रकट नहीं करती है । अन्त में बुद्धगुप्त उसे छोड़कर जाने के लिए भी तैयार होता है तो भी वह आकाशदीप जलाकर उसके मन में प्रेम के प्रति अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है ।

प्रश्न 8. विजय के दम्भ में चूर हुआ बुद्धगुप्त चम्पा से कौन-कौनसी अपेक्षाएँ करने लगा ?

उत्तर–जलदस्यु बुद्धगुप्त ने चम्पा को पोताध्यक्ष मणिभद्र से मुक्त कराया और खुशी से परिपूर्ण होकर पोत पर बैठकर अज्ञात स्थल की ओर रवाना हुआ । एक एकान्त स्थल पर पहुँचकर खुशी से परिपूर्ण हुआ और वहाँ चम्पा नाम की नगरी बसायी जिसका संचालन चम्पा व बुद्धगुप्त ने किया । उनका व्यापार बढ़ता चला गया । उसने विजयश्री प्राप्त करने के साथ ही उसको इस बात का दम्भ था कि वह चम्पा पर भी विजयश्री प्राप्त कर लेगा; किन्तु चम्पा उसे अपने पिता का कातिल समझती है । लम्बे समय तक उसने चम्पा को

हासिल करने का प्रयत्न किया किन्तु चम्पा पर अन्त तक विजयश्री प्राप्त नहीं कर सका। चम्पा भी उससे प्रेम अवश्य करती थी किन्तु उसे प्रत्यक्ष रूप से आभास नहीं होने देती थी। इसी कारण से बुद्धगुप्त अपने मन में चम्पा के प्रति आकांक्षाएँ दिल में बनाये ही रखता था किन्तु जब-जब उसने उसके सामने इजहार किया तब-तब वह अन्तिम क्षणों में हकीकत पर आकर उससे दूर हटती रही, उसे अपना दुश्मन समझती रही। अन्त तक उसकी आकांक्षाओं पर पानी फिरता रहा, वे कभी पूर्ण नहीं हुई।

प्रश्न 9. ''आकाशदीप'' कहानी के शीर्षक का औचित्य सिद्ध कीजिए।

उत्तर–किसी भी कहानी का शीर्षक कहानी परम्परानुसार उसकी विषय-वस्तु, पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं देशकाल एवं वातावरण पर आधारित होता है। इस कहानी का शीर्षक भी विषय-वस्तु के आधार पर रखा गया है। आकाशदीप शीर्षक उपयुक्त शीर्षक है। शीर्षक की सार्थकता हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर सिद्ध कर सकते हैं—

1. संक्षिप्त शीर्षक–किसी भी कहानी का शीर्षक संक्षिप्त होना आवश्यक है। संक्षिप्त शीर्षक वह कहलाता है जिसमें एक से पाँच शब्द हों। इसमें तो केवल एक शब्द ही है। यदि समास-विग्रह भी किया जाता है तो आकाश का दीप तीन शब्द ही होते हैं, इसलिए इस कहानी का शीर्षक संक्षिप्त है।

2. सार्थक शीर्षक–किसी भी कहानी का शीर्षक सार्थक होना आवश्यक है। यदि शीर्षक सार्थक नहीं होता है तो लेखक का उद्देश्य निरर्थक हो जाता है। आकाशदीप शब्द का अर्थ है आकाश में जलने वाला दीपक जो पवित्र होता है। चम्पा के मन में भी बुद्धगुप्त के प्रति आकाशदीप प्रज्वलित रहता है। जैसे आकाशदीप पवित्र होता है उसी प्रकार उसका प्रेम भी पवित्र रहता है। उसे हर परिस्थिति में पवित्र रखने का प्रयत्न करती है। इसलिए इसका यह शीर्षक सार्थक है।

3. आकर्षक शीर्षक–किसी भी कहानी का शीर्षक आकर्षक होना आवश्यक है क्योंकि जैसा शीर्षक होगा वैसी ही मन:स्थिति पाठक अपने मन में बना लेता है। आकाशदीप कहानी का शीर्षक भी आकर्षक है। क्योंकि आकाशदीप शीर्षक को पढ़ते ही पाठक के मन में अनेक प्रश्न उठते हैं कि आकाशदीप क्या है ? किसने कहा है ? कब कहा है ? क्यों कहा है ? कैसे कहा है ? किसलिए कहा है ? आदि प्रश्न उठते हैं और जैसे-जैसे कहानी पढ़ता है वैसे-वैसे ही उसे प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं; इसलिए कहानी का शीर्षक आकर्षक है।

4. प्रतीकात्मक शीर्षक–किसी भी कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक होना आवश्यक नहीं है क्योंकि शीर्षक प्रतीकात्मक होगा तो पाठक को कहानी समझने में जटिलता उत्पन्न होगी किन्तु ''आकाशदीप'' कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है किन्तु वह सरल प्रतीक है। चम्पा ने बुद्धगुप्त को एवं उसकी माँ ने अपने पिता का प्रतीक माना है। इसलिए कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक और उसकी आशाओं का प्रतीक भी है।

इसलिए यही कहा जा सकता है कि आकाशदीप कहानी का शीर्षक उपयुक्त, संक्षिप्त, सार्थक, आकर्षक एवं प्रतीकात्मक है। इसका दूसरा कोई शीर्षक नहीं हो सकता है।

प्रश्न 10. भावार्थ स्पष्ट कीजिए—

(क) तारक-खचित नील-अम्बर और नील-समुद्र के अवकाश में पवन उधम मचा रहा था।

उत्तर–इसमें जयशंकर प्रसादजी ने सायंकाल के समय सूर्य अस्त हो रहा था, उस समय का प्रकृति का सौन्दर्य के रूप में चित्रण किया गया है। नीले आकाश में तारे चमक रहे हैं जो हमें बार-बार आकर्षित कर रहे हैं। सूर्य की किरणें जल में अन्तस्तल हो गयी हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो सूर्य की किरणें जल में विश्राम कर रही हों। चारों तरफ अन्धकार-सा फैल रहा है। हवा भी धीरे-धीरे चल रही है, इससे ऐसा प्रतीत होता है मानो अन्धकार ने हवा को भी धीमा कर दिया हो। इस प्रकार से प्रकृति का वातावरण शान्त सा आकर्षित करने वाला प्रतीत हो रहा है।

(ख) उसके मन में एक सभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी।

उत्तर–दोनों बुद्धगुप्त व चम्पा मणिभद्र से मुक्त होकर एक दूसरे का परिचय प्राप्त करके अनिर्दिष्ट लक्ष्य की ओर रवाना होते हैं। दोनों नदी प्रवाह में निरुद्देश्य सीमा की ओर आगे बढ़ते जा रहे थे। दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति सौहार्द भावना उत्पन्न थी। प्रकृति सौन्दर्य को देखकर चम्पा खयालों में खोयी हुई थी। अच्छे-अच्छे सपने सँजो रही थी। उसके मन में बुद्धगुप्त के प्रति श्रद्धा-भावना परिव्याप्त हो रही थी किन्तु उसका हृदय उसे जलदस्यु समझकर काँप रहा था। फिर भी उसके मन में उसके प्रति श्रद्धा थी और उसके हृदय में पहली बार यौवनावस्था की तरंग उत्पन्न हो रही थी। उसका हृदय बार-बार धड़क रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे समुद्र के वक्षस्थल पर धीरे-धीरे लहर उठ रही हो। उसके हृदय पर तरंगें उत्पन्न हो रही थीं। इसीलिए उसके हृदय के बारे में कहा गया है कि उसके मन में एक सभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी।

(ग) उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा।

उत्तर–चम्पा व बुद्धगुप्त दोनों नाव में यात्रा कर रहे थे। दोनों एक दूसरे से वार्तालाप में मग्न थे। सामने प्रकृति सौन्दर्य का वातावरण फैला हुआ था। दोनों एक दूसरे के सपनों में खोये हुए थे। एक दूसरे के खयालों में खोकर प्रेम को प्रकट कर रहे थे। पृथ्वी और आकाश सफेद हो गये थे। दोनों एक-दूसरे को जकड़ने ही वाले थे कि चम्पा ने बुद्धगुप्त के हाथ पकड़ लिए। जैसे आकाश और समुद्र अलग-अलग होते हैं उसी प्रकार वे अलग हो गये और चम्पा ने चेतनावस्था में आकर कृपाण निकाल ली और उसे जल में फेंक दिया। उस बात से बुद्धगुप्त कहने लगा क्या तुमने मुझे क्षमा कर दिया। इस प्रकार दोनों एक दूसरे से प्रेम प्रकट करते हुए खयालों में खो गये।

(घ) चन्द्र की उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरद-लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया है।

उत्तर–इसमें लेखक ने रात्रि के समय का प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है। चन्द्रमा की चाँदनी चारों तरफ फैल रही है। उस शान्त प्रकाश से युक्त वातावरण को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो शरदकालीन लक्ष्मी का अन्तरिक्ष पृथ्वी पर अवतरण हो रहा हो। चन्द्रमा की चाँदनी के कारण फूल खिलकर चमकने लगते हैं और सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर चारों तरफ का वातावरण सुगन्धयुक्त हो जाता है। जिधर देखो उधर मनमोहक वातावरण की परछाया पड़ती रहती है। उसके रूप सौन्दर्य को देखकर ही बुद्धगुप्त व चम्पा एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो रहे थे।

---

10. घीसा

(महादेवी वर्मा)

लेखिका परिचय–श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में फर्रूखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था । इनके पिता का नाम गोविन्द प्रसाद वर्मा व माता का नाम हेमरानी था । परिवार में धार्मिक संस्कारों का समावेश था । इसी कारण महादेवी वर्मा का भारतीय संस्कृति व दर्शनशास्त्र के प्रति प्रारम्भ से ही लगाव रहा । इन्होंने संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की । इन्होंने अपने आपको अध्ययन के साथ-साथ साहित्य रचना से जोड़ने के लिये महिला विद्यापीठ प्रयाग का संचालन कार्य भी किया ।

कवयित्री के साथ-साथ महादेवीजी उच्चकोटि की गद्य लेखिका भी थी । उनकी गद्य रचनाएँ प्रांजल, प्रौढ़ और चिन्तनपरक हैं जिनमें अपनी अनुभूतियाँ एवं दार्शनिक विचार परम्परा निहित है । संस्मरण एवं रेखाचित्र लिखने में इनको सिद्धहस्त माना जाता है । निबन्ध के क्षेत्र में उनका व्यतित्व और जीवन दर्शन झलकता है । इनकी भाषा शैली सरल, सुबोध एवं सरस है । इनके निबन्ध साहित्यिक, विचारपरक, समीक्षात्मक, सांस्कृतिक भाव प्रबल और समसामयिक विषयों से जुड़े हुए हैं । इसके अन्तर्गत शिक्षा, संस्कृति, राष्ट्रीयता, विश्व कल्याण, मानवता और नारी जीवन की समस्याओं के अनेक प्रश्नों पर विचार करके समस्या का समाधान किया है । उनकी रचनाएँ दलित एवं पीड़ित वर्ग की पीड़ाओं का आँखों देखा हाल उनकी मर्मस्पर्शिनी और संवेदनीय शैली में चित्रित हुई है । यही इनकी पहचान है ।

इनके संस्मरण और रेखाचित्र—भाभी, स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियाँ, रमा, मेरा परिवार, धीरता, स्मृति चित्र आदि हैं । विशिष्ट कृतियों के रूप में साहित्यकार की आस्था, महादेवीजी का विवेचनात्मक गद्य । भाषा सरल, सरस एवं सुधोपम है, जिससे अनुकरणीय है ।

संस्मरण का सार–''घीसा'' महादेवी वर्मा का संस्मरण लेख है । इस संस्मरण में लेखिका ने ''घीसा'' के चारित्रिक गुणों का समावेश किया है । इस छोटे से बालक की घटनाएँ लेखिका भुलाये भी नहीं भूलती है । महादेवी वर्मा गंगा किनारे छोटे से गाँव में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने के लिये गर्मियों की छुट्टियों में पढ़ाने जाती हैं जबकि अन्य अपनी छुट्टियाँ मौज-मस्ती व सम्बन्धियों से मिलने में व्यतीत करते हैं । महादेवी वर्मा ने उस बच्चे को विचित्र पाठशाला का विचित्र मन्त्री कहा है क्योंकि वह विद्यालय सप्ताह में एक बार लगता था रविवार के दिन, विद्यालय के लिये कोई मकान नहीं था । गाँव के बाहर पेड़ के नीचे अध्ययन-अध्यापन होता था । उसके लिये कोई पाठ्यक्रम नहीं था । इसलिये उसे विचित्र पाठशाला कहा गया है । विचित्र मन्त्री इसलिये कहा गया है कि वह घीसा शनिवार को ही वहाँ सफाई करके उस आँगन को लीप-पोत आता था । रविवार के दिन गंगा नदी के किनारे प्रातःकाल ही आकर गुरु का इन्तजार करता था और जैसे महादेवी वर्मा की नाव आती हुई दिखाई देती, वैसे ही वहाँ से भागकर आता । गाँव के सब बच्चों को इकट्ठा करता और गुरुजी के आने का सन्देश सुनाता है और सभी बच्चे इकट्ठे होते हैं । इसी कारण घीसा को विचित्र पाठशाला का विचित्र मन्त्री कहा गया है । महादेवी वर्मा ने अपने चित्रों

का एल्बम भी कहा है या वह यह कहना चाहती है कि मानो मेरी सम्पूर्ण शिक्षाओं को सीख लेना उसका ध्येय हो। क्योंकि जैसे एल्बम में एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी फोटो होती है। उसी प्रकार लेखिका जैसे-जैसे उपदेश देती थी वैसे-वैसे वह उनको ग्रहण करके अपने जीवन में उतारता रहता था। उनकी किसी भी बात का उल्लंघन नहीं करता है इसलिये लेखिका ने उसे चित्रों का एल्बम या सम्पूर्ण शिक्षाएँ ग्रहण करना ही उसका ध्येय है, कहा। जब कभी घीसा उदास दिखाई देता तो महादेवी वर्मा अत्यन्त दु:खी होती है। उसको उसके प्रति सहानुभूति थी। जब छुट्टियाँ समाप्ति पर लेखिका वहाँ से विदा हो रही थी उस समय वह अत्यन्त दु:खी थी। उसके अत्यन्त दु:ख का कारण उनको छोड़ना तो था ही किन्तु उससे भी अधिक दु:ख का कारण उनका प्रिय शिष्य घीसा वहाँ मौजूद नहीं था इस कारण वह अत्यन्त चिन्तित थी। कार्यक्रम की समाप्ति तक उसका इन्तजार करती रही। अन्तिम समय में जब वह वहाँ से रवाना हुई उसका मन विचलित था। थोड़ा सा आगे जाने पर उसे कोई आता हुआ दूर से ही दिखाई दे रहा था। उसके पास थोड़ी सी देर में घीसा महादेवी वर्मा के निकट था। उसके पास हाथ में एक तरबूज था जो लेखिका को गुरु दक्षिणा के रूप में देना चाहता था। वह कुर्ते को बेचकर उसके बदले में तरबूज लेकर आया था। लेखिका ने उसे लेने से एक बार तो इंकार कर दिया किन्तु उसके अनेक आग्रह पर उसे स्वीकार करना ही पड़ा। उसकी इस गुरु दक्षिणा के सामने संसार के सारे आदान-प्रदान फीके पड़ जाते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. गंगापार झूसी के खण्डहरों के प्रति महादेवीजी के आकर्षण का कारण था—
(क) उनके जन्म-जन्मान्तर के संस्कार (ख) अवकाश का समय काटना
(ग) गाँवों की असली हालत पहचानना
(घ) शहर की गन्दगी से पीछा छुड़ाना। **उत्तर–(ख)**

2. घीसा से उसके साथी खिंचे-खिंचे से रहते थे, क्योंकि—
(क) वह कोरी था
(ख) उसकी शक्ल-सूरत अच्छी नहीं थी
(ग) माँ-बाप ने उन्हें मना कर रखा था
(घ) वह गुरुजी का बहुत प्यारा था। **उत्तर–(ग)**

3. घीसा की माँ उससे क्या चाहती थी ?
(क) वह पढ़-लिखकर योग्य बने (ख) अपने पिता का बदला ले
(ग) गुरुजी की सेवा करे (घ) बरु संगति छोड़ दे। **उत्तर–(क)**

4. चाहते हुये भी महादेवीजी घीसा को अपने साथ क्यों नहीं ले गईं ?
(क) वह उनके लिये आगे चलकर बोझ बन जाता
(ख) उसके बिना उसकी माँ तड़प-तड़प कर मर जाती
(ग) वह शहर में रहने लायक नहीं था
(घ) घीसा को उनके साथ में रहना पसन्द नहीं था। **उत्तर–(ख)**

5. घीसा ने अपनी गुरुभक्ति किस प्रकार प्रकट की ?
(क) गुरुजी को तरबूज देकर (ख) अपनी माँ से असलियत छिपाकर
(ग) साथियों को धोखा देकर (घ) पराया माल चुराकर। उत्तर–(क)

6. महादेवीजी ने घीसा को क्यों अपनाया ?
(क) मानवीय करुणा से द्रवित होकर (ख) संस्मरण लिखने का पात्र बनाकर
(ग) दुनिया की वाहवाही लूटने के कारण
(घ) अकेले एकांत जीवन से ऊबकर। उत्तर–(क)

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. महादेवीजी को गंगा पार झूँसी के आस-पास के गाँवों में जाना सुखकर क्यों लगा ?

उत्तर–महादेवी वर्माजी को गंगा पार झूँसी के आस-पास के गाँवों में जाना रुचिकर एवं सुखकर इसलिये लगा कि लेखिका ने सोचा वहाँ कोई विद्यालय नहीं है। इस क्षेत्र के बच्चों को शिक्षा दे देनी चाहिए और समाज को समता के स्तर पर लाना चाहिए। वह वहाँ के बच्चों को पढ़ाना चाहती थी और वहाँ के बच्चों के मन में पढ़ने के प्रति रुचि भी थी। जैसी-जैसी शिक्षा महादेवी देती थी वैसा-वैसा अनुसरण सभी बच्चे करते थे। महादेवी वर्मा गाँधीवादी विचारधारा के अनुसार ग्रामीण विकास करना चाहती थी। इसी कारण लेखिका ने कहा है कि गंगा पार झूँसी के खंडहर और उसके आस-पास के गाँवों के प्रति मेरा अकारण आकर्षण रहा है, उसे देखकर ही संभवतः लोग जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध का व्यंग्य करने लगे हैं। आश्चर्य की ही बात है जिस अवकाश के समय को लोग इष्ट मित्रों से मिलने, उत्सवों में सम्मिलित होने तथा अन्य आमोद-प्रमोद के लिये सुरक्षित रखते हैं, उसी को मैं इस खंडहर और उसके क्षत-विक्षत चरणों पर पछाड़े खाती हुई भागीरथी के तट पर काट ही नहीं, सुख से काट देती हूँ, वे कहती हैं कि मैं नहीं कह सकती कि कब और कैसे मुझे उस गाँव के बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया। पर जब बिना कार्यकारिणी के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चन्दे का अपील के और सारांश यह कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो आये तब मैं कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गंभीरता का भार वहन कर सकी। वहाँ के बच्चें जिज्ञासु थे। इस कारण से उसको सुखकर लगा।

प्रश्न 2. गाँव के बालकों की वेशभूषा और दुर्दशा का रेखांकन उन्होंने किस प्रकार किया है ?

उत्तर–गाँव के बालक जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। उनकी वेशभूषा व् रूप सौन्दर्य का चित्रण करते हुए लेखिका कहती हैं कि उन बालकों के कुछ के कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने, धुले कुरते और ऊँची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लम्बा कुर्ता पहने, खेत में डराने के लिये खड़े किये गये नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और दुर्बल टाँगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुण सौम्यता और निष्प्रभ पीली आँखों में संसार भर की उपेक्षा

बटोरे बैठे थे । पर घीसा उनमें अकेला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अकेला ही आता है । इस प्रकार से लेखिका ने उनके रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है ।

प्रश्न 3. घीसा कौन था और वह लेखिका के नजदीक आने के प्रयास किस प्रकार और क्यों करने लगा ?

उत्तर–घीसा कोरी जाति का लड़का था । उसके पिता नहीं थे । लीप-पोतकर उसकी माताजी उसका पालन-पोषण करती थी । उसने लेखिका के नजदीक आने का प्रयास इसलिये किया कि वहाँ पढ़ने वाले लड़के घीसा को हीन भावना से देखते थे । अपने पास बैठने नहीं देते थे । उससे घृणा की भावना रखते थे; इसलिये वह भी उनसे सहमा-सहमा रहता था । इसलिये वह गुरु से नजदीक बनकर उसके सामीप्य रहना चाहता था । लेखिका का सामीप्य सुख चाहने के लिये लेखिका के प्रत्येक आदेश का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता था । लेखिका जैसे-जैसे कहती वह बिना किसी परिवर्तन के पालन करता रहता था । इसीलिये लेखिका ने यही कहा है कि मानो सारी विद्याएँ सीख लेना उसका ध्येय हो या वह लेखिका के चित्रों का एल्बम हो । ऐसा प्रयास इसलिये कर रहा था क्योंकि गुरु ही सब कुछ होता है । गुरु की सेवा ईश्वर की सेवा समझता था । गुरु के सामने झूठ भी नहीं बोलता था क्योंकि उसका मानना था कि गुरु से झूठ बोलना ईश्वर से झूठ बोलना है । वह गुरु को भगवान समझता था इसलिये उसी से नजदीकियाँ बनाने लगा ।

प्रश्न 4. घीसा के माता-पिता और परिवार का परिचय दीजिए ।

उत्तर–घीसा के माता-पिता कोरी जाति के थे । उसका पिता अभिमानी भला आदमी बढ़ईगिरी का काम करता था । सजातीय जाति में विवाह किया । उसकी पत्नी भी स्वाभिमानी व गर्वीली थी । घीसा के पैदा होने से पूर्व ही उसके पिता का देहान्त हो गया था । समाज के लोगों ने उसका भार अपने कन्धों पर लेने का प्रयत्न किया किन्तु उसने यह स्वीकार नहीं किया । उसने यही कहा कि मैं दु:खों में कर्मों का निर्वाह कर लूँगी किन्तु किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करूँगी । इस प्रकार वह खुद ही मेहनत-मजदूरी करते हुए अपने परिवार का पालन-पोषण करती थी । परिवार में कोई दूसरा न होने के कारण अपने बच्चों को भी जहाँ जाती वहाँ साथ लेकर जाती । इस प्रकार अपने परिवार का भरण-पोषण करती थी । इस प्रकार से घीसा के माता-पिता अत्यन्त स्वाभिमानी एवं कर्मशील थे ।

प्रश्न 5. घीसा के मन में पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति किस प्रकार जगी और उसने उसके लिये कैसे-कैसे प्रयास किये ?

उत्तर–घीसा अपने जीवन सम्बन्धी अपवाद को कदाचित् पूरा नहीं समझ पाया था परन्तु अधूरे का भी प्रभाव उस पर कम न था क्योंकि वह सबको अपनी छाया से इस प्रकार बचाता रहता था मानो उसे कोई छूत की बीमारी हो किन्तु पढ़ने में, उसे सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट चमचमाती रखने और अपने छोटे से छोटे काम का उत्तरदायित्व बड़ी गम्भीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था । इसीलिये लेखिका ने सोचा कि उसकी माँ से उसे माँग लूँ और अपने पास रखकर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ । परन्तु उस उपेक्षिता पर मानिनी विधवा का वही एक सहारा था । वह अपने पति का स्थान छोड़ने पर प्रस्तुत न होगी, ऐसा लेखिका जानती थी कि इस बालक के बिना उसकी माँ का जीवन कितना दु:खदायी हो जायेगा । लेखिका ने उसकी छोटी सी अवस्था में गुरु भक्ति व कर्त्तव्य-

परायणता को देखकर उचित शिक्षा दी । उस घीसा ने भी गुरु को भगवान समझकर जैसे-जैसे वह कहती वैसे-वैसे नियमों का पालन करता हुआ शिक्षा ग्रहण करता । उसका यह मानना था कि गुरु से धोखा करना ईश्वर से धोखा करना है । इस प्रकार से शिक्षा ग्रहण करता हुआ गुरु के प्रत्येक वचनों का अनुसरण करता रहा । अपने जीवन भर गुरु की शिक्षाओं को ग्रहण करता रहा ।

प्रश्न 6. घीसा की दयनीयता और माता की ममता का चित्रण महादेवीजी ने किस प्रकार किया है ?

उत्तर–लेखिका कहती है कि वह गोधूलि मुझे अब तक याद है, मैं उसे नहीं भूली । संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिप कर अंजन की मूठ चला दी थी । मेरा नाव वाला कुछ चिन्तित सा लहरों की ओर देख रहा था, बूढ़ी भक्तिन मेरी किताबें, कागज, कलम आदि संभालकर नाव पर रखकर बढ़ते हुए अंधकार पर खिजलाकर बुदबुदा रही थी । नाव की ओर बढ़ते हुए मेरे पैर, फैलते हुए अंधकार में एक स्त्री मूर्ति को अपनी ओर आता देख ठिठक रहे कन्धे पर हाथ रखकर वह दुर्बल अर्धनग्न बालक को अपने पैरों से चिपकाए हुए थी । उसने रुक-रुककर कुछ शब्दों और कुछ संकेतों में जो कहा उससे लेखिका यह समझ सकी कि उसके पति नहीं हैं, दूसरों के घर लीपने-पोतने का काम करने वह चली जाती है । उसका यह लड़का ऐसे ही घूमता रहता है मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया करूँ तो यह कुछ तो सीख सके । दूसरे रविवार को लेखिका ने उसे सबसे पीछे अकेले एक कोने में दुबककर बैठे हुए देखा, पक्का रंग, पर गठन में और अधिक सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली पर सचेत आँखें जड़ी सी जान पड़ती थीं । कसकर बन्द किये हुए पतले होठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख को संकोच भरी कोमलता विद्रोह कर रही थी । उभरी हुई हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कंधों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाँहें ऐसे झूलती थीं जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर विशेष पुष्ट जान पड़ते थे । ऐसी दयनीय स्थिति थी घीसा की ।

घीसा के बारे में व उसकी माँ के ममत्व के बारे में लेखिका को बच्चों ने बताया कि उसके पिता तो जन्म से पहले ही मर गये थे । घर में कोई देखने-भालने वाला न होने के कारण माँ उसे बंदरिया के बच्चे के समान चिपकाये फिरती थी । उसे एक ओर लिटाकर जब वह मजदूरी के काम में लग जाती थी तब पेट के बल घसीट-घसीट कर बालक संसार में प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था । इसीलिये उसका नाम घीसा पड़ा ।

प्रश्न 7. होली के पहले की उस घटना का वर्णन कीजिए जो महादेवीजी की स्मृति में गहरे रंगों से अंकित हो गई थी ।

उत्तर–महादेवी वर्मा कहती है कि होली के पहले की एक घटना तो लेखिका की स्मृति में ऐसे गहरे रंगों से अंकित हैं जिसका धुल सकना सहज नहीं । उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य धीरे-धीरे बढ़ रहा था और किसी दिन भी वह चरम सीमा पर पहुँच सकता था । घीसा दो सप्ताह से ज्वर से पीड़ित था । दवा महादेवी भिजवा देती थी लेकिन

देखभाल का कोई ठीक प्रबन्ध न हो पाता था। दो-चार दिन उसकी माँ स्वयं बैठी रही फिर एक अंधी बुढ़िया को बैठाकर काम पर जाने लगी।

रविवार की सायंकाल के समय लेखिका बच्चों को पढ़ाकर विदा करके घीसा को देखने के लिये रवाना हुई। किन्तु उस पीपल के पेड़ से कुछ ही दूरी पर पहुँची तो उसने डगमगाते पैरों से गिरते-गिरते अपनी ओर आते हुए घीसा को देखा तो लेखिका का मन उद्विग्न हो गया। घीसा तो पन्द्रह दिन से उठा ही नहीं था, अतः महादेवी वर्मा को उसके सन्निपात-ग्रस्त होने का सन्देह हुआ। उसके सूखे शरीर में तरल विद्युत सी दौड़ रही थी, आँखें भी सतेज और मुख ऐसा था जैसे हल्की आँच में धीरे-धीरे लाल होने वाला लोहे का टुकड़ा लेकिन उसकी चिन्ता बुखार से ज्यादा दूसरी थी, वह प्यास से जाग गया था, पर पानी पास नहीं मिला और मनिमा की अंधी-माजी से माँगना ठीक न समझकर वह चुपचाप कष्ट सहने लगा। इतने में मुल्लू के कक्का ने पार से लौटकर दरवाजे से ही अंधी को बताया कि शहर में दंगा हो गया है और तब उसे गुरु साहब का ध्यान आया। मूल्लू के कक्का के हटते ही वह ऐसे हौले-हौले उठा कि बुढ़िया को पता ही न चला और कभी दीवार कभी पेड़ का सहारा लेता हुआ महादेवी की ओर भागा। अब वह गुरु साहब के गोड़ घर यहीं पड़ा रहेगा पर पार किसी तरह न जाने देगा।

तब लेखिका की समस्या और जटिल हो गयी। पार तो लेखिका को भी पहुँचना था ही पर साथ ही बीमार घीसा को ऐसे समझाकर जिससे उसकी स्थिति और भी गम्भीर न हो जाए। पर सदा के संकोची, नम्र और आज्ञाकारी घीसा का इस दृढ़ और हठी बालक मे पता ही न चलता था। उसने पार साल ऐसे ही अवसर पर हताहत दो मल्लाह देखे थे औ कदाचित् इस समय इसका रोग के विकृत मस्तिष्क उन चित्रों में गहरा रंग भर मेरी उलझन को और उलझा रहा था। पर उसे समझाने का प्रयत्न करते-करते अचानक महादेवी ने एक तार का स्पर्श किया जिसका स्वर नया था अर्थात् एक बात ध्यान आयी। यह आभास होते लेखिका ने घीसा से कहा कि मेरे पास रेल में बैठकर दूर-दूर से आये हुए बहुत से विद्यार्थ हैं जो अपनी माँ के पास साल भर में एक ही बार पहुँच पाते हैं और जो मेरे न जाने से अकेले घबरा जायेंगे, घीसा का लेखिका को रोकने का सारा हठ, सारा विरोध ऐसे बह गय जैसे कभी था ही नहीं। तब घीसा के समान तर्क क्षमता किसी में थी ही नहीं। वह कहने लगा जो साँझ को अपनी माई के पास नहीं जा सकते उनके पास गुरु साहब को जाना चाहिए। घीसा रोकेगा तो उसके भगवानजी गुस्सा हो जायेंगे क्योंकि वे ही तो घीसा को अकेला बेकार घूमता देख कर गुरु साहब के पास भेज देते हैं। लेखिका कहती है कि उसके तर्कों का स्मरण कर आज भी मन भर आता है किन्तु उस दिन लेखिका को आपत्ति से बचाने के लिये अपने बुखार से जलते हुए अशक्त शरीर को घसीट लाने वाले घीसा को जब उसकी टूटी खटिया पर लिटाकर लेखिका लौटी तो उसके मन में कौतूहल की मात्रा अधिक थी जिसे वह कभी भूल नहीं सकती है।

प्रश्न 8. बीमारी से उठने के बाद घीसा ने गुरुजी (महादेवीजी) को कौनसी गुरु दक्षिणा देनी चाही और क्यों ?

उत्तर—जब घीसा बीमारी के अपहत हो गया और गर्मी का मौसम प्रारम्भ हो गया, धूल और सूखी पत्तियों को बांधकर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से

उसका रोज संग्राम छिड़ने लगा अर्थात् आंधी-तूफान आने लगे । झाड़ते-झाड़ते ही वह पाठशाला धूल-धूसरित होकर, भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिपकर तथा कंकाल शेष शाखाओं में उलझते सूखे पत्तों को पुकारते वायु की सुतप्त सर-सर से मुखरित होकर उस भ्रान्त बालक को चिढ़ाने लगती । तब लेखिका ने तीसरे पहर से संध्या तक वहाँ रहने का निश्चय किया परन्तु पता चला कि घीसा किस-किसाती आँखों को मलता और पुस्तक से बार-बार धूल झाड़ता हुआ दिनभर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती अनागरिक ब्रह्मचारी हो जिसकी तपस्या भंग करने के लिये लू के झोंके आते हैं । इस प्रकार लेखिका ने गर्मियों की छुट्टियाँ करने की उद्घोषणा की । उद्घोषणा से सभी छात्र दु:खी हुए । उनके सामने समस्या आने लगी कि छुट्टियों के दिन कैसे गिनेंगे । पुस्तकों व पाठ्य सामग्री की रक्षा कैसे होगी आदि प्रश्न उठने लगे । लेखिका जब विदा होने लगी तब उस समय उसका प्रिय शिष्य घीसा वहाँ मौजूद नहीं था । तब वह वहाँ से चिन्तित सी रवाना हुई तो उसने देखा एक दु:खी मन का बच्चा आ रहा है जिसके हाथ में एक बड़ा तरबूज था जिसमें बीच में कुछ कटे भाग में से भीतर की ईषत् तलाई चारों ओर के हरेपन में कुढ़-खिल बन्द गुलाबी फूल जैसी जान पड़ती थी । यह घीसा की तरफ से विदाई के समय गुरु दक्षिणा थी जो उसने बीमारी से उठने के बाद दी ।

प्रश्न 9. घीसा के उपेक्षित जीवन के अन्त ने महादेवीजी को किस प्रकार भाव विभोर कर दिया ?

उत्तर–जब घीसा ने विदाई के समय गुरु दक्षिणा में तरबूज लाकर दिया तो लेखिका के मन में एक बार तो संकोच हुआ कि घीसा के पास पैसे भी नहीं थे तो क्या यह तरबूज चुराकर लाया है, न इसके खेत हैं । इसलिये लेखिका के मन में सन्देह हुआ । लेखिका के मन में सन्देह बाहर आने वाला ही था कि घीसा ने कहा—घीसा गुरु साहब से झूठ बोलना भगवानजी से झूठ बोलना समझता है । वह तरबूज कई दिन पहले देख आया था । माई के लौटने में न जाने क्यों देर हो गई तब उसे अकेले खेत पर जाना पड़ा । वहाँ खेत वाले का लड़का था जिसकी उसके नये कुरते पर बहुत दिनों से नजर थी । प्राय: सुना-सुना कर कहता रहता था कि जिसकी भूख झूठी पत्तल से बुझ सकती है उनके लिये परोसा लगाने वाले पागल होते हैं । उसने कहा, पैसा नहीं है तो कुरता दे जाओ और घीसा आज तरबूज न लेता तो कल उसका क्या करता । इससे कुरता दे आया, पर गुरु साहब को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि गर्मी में वह कुरता पहनता ही नहीं और जाने-आने के लिये पुराना ठीक रहेगा । तरबूज सफेद न हो इसलिए कटवाना पड़ा, मीठा है या नहीं, यह देखने के लिये उँगली से कुछ निकाल भी लेना पड़ा ।

अन्त में कहता है कि गुरु साहब न लें तो घीसा रात भर रोयेगा, छुट्टी भर रोयेगा, ले जाएँ तो वह रोज नहा-धोकर पेड़ के नीचे पढ़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिखकर दिखा सकेगा ।

तब लेखिका अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हथ रखकर भावातिरेक से ही निश्चत हो रही । उस तट पर किसी गुरु को शिष्य से कभी ऐसी गुरु दक्षिणा न मिली होगी, ऐसा लेखिका को विश्वास ही नहीं अपितु उस दक्षिणा के सामने संसार के अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े और लेखिका भावविभोर हो गयी ।

प्रश्न 10. पठित पाठ के आधार पर महादेवीजी की भाषा शैली और संस्मरण कला पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर–श्रीमती महादेवी वर्मा रहस्यवादी कवयित्री के रूप में तो सुविख्यात है ही, प्रौढ़ गद्य लेखिका के रूप में भी विशेषत: संस्मरणात्मक रेखाचित्र लेखिका के रूप में भी हिन्दी साहित्य में इनका अद्वितीय स्थान है । ये वर्तमान युग की मीरा कहलाती हैं । कविता की भाँति महादेवी का गद्य भी बड़ा भावपूर्ण और अनूठा है पर पद्य की भाँति वह रहस्यात्मक नहीं है । सामाजिक यथार्थ से जुड़ा होने के कारण तथा उसमें अनुभूति का गहरा पुट होने के कारण उसमें अभिव्यक्ति क्षमता इतनी मार्मिक और सहज है कि पाठक शीघ्र ही उससे रसानुभूति करने लगता है । दलित और उपेक्षित मानव की मर्म व्यथा को मुखरित करने वाले इनके रेखाचित्रों व संस्मरणों से हिन्दी साहित्य के एक महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्ति हुई है । उससे काव्य की स्वाभाविक मधुरता, कहानी की मनोरंजकता, रेखाचित्रों का सूक्ष्म विवरण और संस्मरण का हार्दिक संवेदन एक साथ देखा जा सकता है । उनके संस्मरण और रेखाचित्र स्मृति की रेखाएँ और अतीत के चलचित्र नाम से प्रकाशित हुए हैं । आधुनिक नारी की समस्याओं पर अनेक सामाजिक लेख लिखे हैं ।

महादेवी वर्मा की गद्य शैली चित्रात्मक और काव्यमयी है । इनके विचारात्मक गद्य में तर्क और विश्लेषण की प्रधानता है तो भावात्मक गद्य में कल्पना और बिम्ब योजना की तत्सम शब्दावली का बाहुल्य होते हुए भी इनका गद्य शुष्क, बोझिल और दुरुह नहीं हो पाया है । वह काव्य की मधुरता है । घीसा नामक संस्मरण रचना आरम्भ से अन्त तक हृदय को मथ डालने वाली करुणा से भीगी है । इसकी शैली चित्रात्मक और भावपूर्ण है जिससे पाठक के मन में संवेदनाएँ हो जाती हैं ।

---

11. प्रवास की डायरी–कुछ विशिष्ट पन्ने

(हरिवंशराय बच्चन)

लेखक-परिचय–हरिवंशराय बच्चन का जन्म 27 नवम्बर, सन् 1907 को इलाहाबाद में हुआ । इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. परीक्षा पास करके अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ किया । 1941 में इलाहाबाद में विश्वविद्यालय में अंग्रेजी प्राध्यापक पद पर कार्य किया । इनकी पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु होने पर इन्होंने पाँच वर्षों तक विधुर जीवन व्यतीत किया । इसके बाद 24 जनवरी, 1942 में श्रीमती तेजी से इनका विवाह हुआ । अपने स्वाध्याय और पुरुषार्थ के बल पर बच्चनजी निरन्तर आगे बढ़ते गये । वे आकाशवाणी और विदेश मंत्रालय के उच्च पदों पर कार्यरत रहे । सन् 1966 में भारत के राष्ट्रपति ने इनको राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया । उनको राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया । ''हालावाद'' के प्रवर्तक के रूप में बच्चनजी युवा पीढ़ी के अत्यन्त लोकप्रिय कवि रहे ।

इनका साहित्य क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और बहुआयामी रहा है । इन्होंने आधुनिक कविताओं में बहुरंगी विचार-सूत्र और भाव चित्र अंकित किये हैं । इनकी रचनाएँ निम्न हैं—मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा, निमंत्रण, एकान्त संगीत, हलाहल, मिलनयामिनी, अंगारे आदि गद्य में नये-पुराने झरोखे, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, प्रवास की डायरी आदि । इनकी भाषा तुकान्त और अतुकान्त, छंदोबद्ध और छन्दमुक्त, गीत और संगीत का मिश्रण है ।

यात्रावृत्त डायरी का अंश का परिचय—इस यात्रावृत्त डायरी में बच्चनजी अपने प्रवासकाल अथवा विदेश यात्रा के समय अपनी प्रतिदिन की घटनाओं को लिखा था जिसमें उनके जीवन के अनुभवों को साहित्यिक शैली में चित्रित किया है । उनकी यात्रा 12 अप्रैल, 1952 से 12 जनवरी, 1953 तक रही । इस डायरी में उनकी विशेष घटनाओं का चित्रण किया है । इंग्लैण्ड में जिन-जिन से मिले, जो-जो कार्यक्रम किये उनका सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । वहाँ क्या-क्या सीखा, इसके बारे में लिखा कि वे अनुसंधान कार्य के लिये विदेश गये । हरिवंशराय बच्चन केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अनुसंधान के लिये गये । के.एन. सपरू और एम.वाई. घोटपदे बच्चनजी से मिलने आये । ये मजलिम के सभापति हैं । इन्होंने उद्घोषणा की कि भारत, पाकिस्तान, बरमा और सीलोन सबकी एक ही मजलिस है ।

वे बच्चनजी को मजलिस का आजीवन सदस्य बनाना चाहते थे किन्तु बच्चनजी ने स्वीकार नहीं किया । खाने के बाद डा. सीविस और प्रो. विली को पत्र लिखे । विश्वनाथ दत्त कई बार बच्चनजी से वहाँ मिलने आये । बच्चनजी भी उनसे मिलने गये किन्तु दत्त साहब विदेश से नहीं आये थे । उनकी पत्नी को कई कविताएँ सुनाईं । देर से घर लौटे तो घर के दरवाजे बन्द हो चुके थे । सामने के मकान में एक लड़का पढ़ रहा था । इसके बाद पढ़ने के बारे में सोचने लगे । इसके बाद उनकी मुलाकात मादमो जेल से हुई जो प्रेम कुमारी थी । वह साहित्य का डिप्लोमा लेने आयी थी । बच्चनजी ने उससे फ्रेंच में बातचीत की तो वह बहुत प्रसन्न हुई । इसके बाद उसने बच्चनजी को फ्रेंच सिखाई । वहाँ से वे घूमने गये तो भारतीय प्रेम के रूप में एक जोड़े को प्रेम करते हुए देखा ।

इसके बाद वे लाइब्रेरी में गये । वहाँ अनेक पुस्तकें देखीं जिनका अध्ययन आवश्यक था । अब उन्हें घर की याद सताने लगी थी । इसलिये घर पत्र लिखे व तस्वीरें भेजीं । उस दिन उन्होंने वहाँ सिनेमा देखा । तस्वीर जरूर समझ में आयी किन्तु कहानी कम समझ में आयी । वहाँ उन्होंने सभापति का भाषण सुना एवं आधुनिकता वहाँ देखने को मिलती है । वहाँ की आधुनिकता बाहरी रूप से तो देखनी चाहिए आन्तरिक रूप से ग्रहण नहीं करनी चाहिए ।

इसके बाद बच्चनजी मि. बेग से मिले, वे बच्चनजी के साथ ही पढ़ते थे । देर रात तक वहाँ नींद भी नहीं आती थी इसलिये कविता लिखना उनका प्रतिदिन का कार्यक्रम था । इसलिये जिस दिन कविता लिखते थे उस दिन आराम से नींद आती थी । वहाँ वे एक बार मेले में भी गये । वहाँ के दृश्यों को देखा । बड़े व्यक्ति तो शिक्षा ग्रहण करने को कुछ मिलता है । वैसे मेले में उत्साह व खुशी का मौका रहता है । कुछ समय तो खुशी से रहती है । थोड़ी देर सुख-सन्तोष अवश्य रहता है किन्तु मन में शान्ति वहाँ भी नहीं मिलती है । किसी भी मेले में आकर मनुष्य अपने पूरे जीवन का पर्यवेक्षण करता है ।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. प्रवास का जीवन और दिनचर्या बच्चनजी को कैसी लगी ?
(क) भारतीय वातावरण के अनुकूल (ख) मन में ऊब पैदा करने वाली
(ग) मशीन की भाँति चलने वाली (घ) संवेदनाशून्य। **उत्तर**–(ग)
2. यूरोप के निवासी भारत के प्रति किस प्रकार की भावनायें रखते हैं ?
(क) मित्रतापूर्ण (ख) द्वेष और घृणा से भरी हुई
(ग) जिज्ञासा और कौतूहल से मिश्रित
(घ) अनुकरण करने योग्य। **उत्तर**–(क)
3. विदेश यात्रा की बच्चनजी के मन में कैसी प्रतिक्रिया हुई ?
(क) वहाँ की जीवन प्रणाली हमें अपनानी चाहिये
(ख) भारतीयता के साथ उसका तालमेल नहीं बैठ सकता
(ग) पूर्व और पश्चिम में सामन्जस्य स्थापित हो
(घ) भौतिक चकाचौंध भटकाने वाली है। **उत्तर**–(ग)
4. आधुनिकता की दौड़ में यूरोप हमसे किस क्षेत्र में आगे है ?
(क) वैज्ञानिक आविष्कारों के चमत्कार में
(ख) राजनीतिक षड्यंत्रों के कारनामों में
(ग) आध्यात्मिक चिन्तन की दिशा में आगे बढ़ने में
(घ) विश्व की शान्ति और सुरक्षा के मार्गदर्शन में। **उत्तर**–(क)
5. प्रवास की डायरियाँ लिखने से क्या होता है ?
(क) ज्ञान की वृद्धि (ख) साहित्य की एक विशेष विधा की वृद्धि
(ग) समय की बरबादी (घ) अपना अहं व्यक्त करना। **उत्तर**–(ख)

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. ''प्रवास काल'' में ''डायरी लेखन'' की प्रेरणा बच्चनजी के मन में क्यों उत्पन्न हुई ?

उत्तर–डायरी लिखने की प्रेरणा लेखक के मन में प्रवासकाल से उत्पन्न हुई क्योंकि प्रवासकाल के समय किन-किनसे मिले, उनसे क्या-क्या सीखा आदि बातें बच्चन ने जानकर दावा किया कि व्यक्ति डायरी लिखकर यह जान सकता व बता सकता है कि मैंने क्या खोया और क्या पाया। इसके अलावा अपने आपकी स्वाभाविकता को सबके सामने प्रस्तुत कर सकता है। इससे व्यक्ति की आत्मकथा या जीवनी लिखी जा सकती है और व्यक्ति अपने जीवन के वास्तविक मूल्यों को एवं नैतिक आदर्शों को ग्रहण कर सकता है। इसलिये व्यक्ति को अपनी डायरी लिखनी चाहिए। इसीलिए बच्चनजी ने अपने जीवन के प्रत्येक कार्यक्रमों पर डायरी लिखी।

प्रश्न 2. मंगलवार, 22 अप्रैल, 1952 को लिखी गई डायरी के मुख्य-मुख्य अंश कौन-कौन से थे ? उनसे बच्चनजी ने कौन-कौन से निष्कर्ष निकाले ?

उत्तर–मंगलवार, 22 अप्रैल, 1952 को बच्चनजी ने सर्वप्रथम दैनिक दिनचर्या का कार्य पूरा किया। के.एन. सपरू और एम.वाई. घोरपदे उनसे मिलने आये। एक कैम्ब्रिज

विश्वविद्यालय में मन्त्री थे तो दूसरे सभापति । उन्होंने बच्चनजी को बताया कि भारत-पाकिस्तान, बरमा और सीलोन की एक मजलिस है । वे बच्चनजी को मजलिस का आजीवन सदस्य बनाना चाहते थे । बच्चनजी ने पेशकश की कि मिसेज पंडित की तरह मुझे तो निकाल नहीं दिया जायेगा । इसलिये बच्चनजी ने साधारण सदस्यता स्वीकार कर ली । विश्वनाथ दत्त बच्चनजी के पास कई बार आ चुके हैं । आज वे उनसे मिलने घर गये । दत्तजी विदेश से नहीं लौटे थे इसलिये उनकी पत्नी कमलाजी मिली । नौ बजे दत्ताजी विदेश से आये । दोनों ने एक-दूसरे से बातचीत की । कमलाजी की पेशकश पर बच्चनजी ने अनेक कविताएँ सुनाईं । देर रात 11 बजे वापिस लौटे । घर पहुँचते-पहुँचते 12 बज गये थे । मि. मटेलका और बच्चनजी से वार्तालाप हुआ ।

बच्चनजी ने देखा कि सामने देर रात तक सिडनी कॉलेज के कमरे में एक लड़का पढ़ रहा था । तभी बच्चनजी ने वहाँ की जो कहावत प्रसिद्ध है उसकी ओर ध्यान गया कि जल्दी सो जाओ और जल्दी उठो, ऐसा करने पर व्यक्ति बुद्धिमान और स्वस्थ रहता है । लेकिन ऐसी बातें कहने के लिये हैं किन्तु इनका पालन कोई नहीं करता । लोग देर से सोते हैं और देर से उठते हैं । आज के दैनिक दिनचर्या के कार्यक्रम बिल्कुल उल्टे हो गये हैं । सभी पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है ।

इनसे बच्चनजी ने यह निष्कर्ष निकाला कि सभी देशों में एकता, समानता और आपसी सहयोग होना चाहिए । समय पर घर लौटना चाहिए । अपने दैनिक कार्यक्रमों को नियमानुसार तरीके से करना चाहिये । जो आधुनिकीकरण हो रहा है उसका परित्याग करके संस्कृति के अनुसार पालन करना चाहिए ।

प्रश्न 3. डायरी के विशिष्ट पन्नों के आधार पर बच्चनजी की मानसिकता का एक रेखाचित्र अंकित कीजिए ।

उत्तर–हरिवंश राय बच्चनजी 12 अप्रैल, 1952 को अनुसंधान कार्य हेतु इंग्लैण्ड गये । वहाँ जाकर उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अनुसंधान का कार्य किया । वहाँ उनकी मुलाकात के.एन. सप्रू एवं एम. वाई. घोरपदे से हुई । उनके कथनानुसार उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुए कि सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बंधकर समता व आपसी सहयोग का पालन करना चाहिए । उसी दिन देर रात को जब घर लौटे तो सिडनी कॉलेज के विद्यार्थी को पढ़ते हुए देखा और दैनिक कार्यक्रमों के बाद में विश्लेषण किया कि व्यक्ति को स्वस्थ एवं बुद्धिमान रहने के लिये प्रातः जल्दी उठना चाहिए और जल्दी सोना चाहिए । किन्तु आजकल तो इसका उल्टा ही प्रभाव हो रहा है कि रात को 12 या 1 बजे तक सोयेंगे और प्रातः 8 या 9 बजे तक उठेंगे । स्वस्थ रहने के लिये समयानुसार नहाना भी लाभदायक है ।

उन्होंने लाइब्रेरी में अनेक विषयों की अनेक पुस्तकें देखीं । उन लेखकों के बारे में उनके मन में भावगम्यता उत्पन्न हुई । उसी दिन फ्रेंच कुमारी मार्दमोजेल से मुलाकात हुई । उससे थोड़ी फ्रेंच भाषा में बातचीत की तो वह प्रसन्न हुई कि दूसरे देश के व्यक्ति उनकी भाषा जानते हैं तो वे उनका सम्मान करते हैं । खाना खाने के बाद घूमने निकले तो नदी किनारे एक नवयुवक प्रेमी युगल को प्रेम करते हुए देखा जो भारतीय पद्धति से कुछ भिन्न था । प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध हो गये ।

कुछ दिन बाद सेन्ट्रल लाइब्रेरी पहुँचे । वहाँ अनेक विद्वानों की अनेक पुस्तकें देखीं तो ज्ञात हुआ कि भारतीय दर्शन का भी विदेशी साहित्य में प्रभाव है, जब रात को घर पहुँचे तो अपने परिवार की याद सताने लगी तो अपने बच्चों को पत्र लिखा, साथ में तस्वीर भेजी । इससे उनकी मानसिकता का पता चलता है कि वे विदेश में रहते हुए भी परिवार से दूर नहीं थे । मनोरंजन के लिये एक साथ सिनेमा था । उसकी चाहे भाषा समझ में न आये किन्तु दृश्य दर्शनीय थे । बच्चनजी ने वहाँ 'अमरीका की विदेश नीति' पर भाषण सुना । वहाँ अनेक कविताएँ पढ़ीं । वहाँ अनेक विद्वानों के मत पढ़े और सोचा कि केवल नेहरू के वक्तव्यों से ही हमारे देश का कार्य चलने वाला नहीं है । वहाँ आधुनिकता पर प्रकाश डाला गया । यूरोप आधुनिकता में सबसे आगे है । हमारे देश को भी आधुनिकता का अनुसरण करना चाहिए, बाह्य रूप से आन्तरिक रूप से नहीं । नहीं तो भारतीय संस्कृति प्राय: विलुप्त हो जायेगी । इस पर चलकर हमारी मनोवृत्ति विश्व की प्रगति में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती है ।

वहाँ अनुसंधान कार्य के लिये गये तो भी वहाँ वे कविताएँ प्रतिदिन लिखते थे । उसके बारे में सोचते रहते कि यह कार्य तो अपने देश में भी पूरा किया जा सकता है । यहाँ तो मुझे जिस कार्य के लिये मैं आया हूँ वह कार्य करना चाहिए । वहाँ वे अनेक मित्रों से मिले व उनसे कई प्रकार की शिक्षाएँ ग्रहण कीं, वहाँ मेले में घूमकर कई अनुभव प्राप्त किये और मानव जीवन का पर्यवेक्षण किया । इस प्रकार बच्चनजी की मानसिकता ने विदेश में अनेक अनुभवों को ग्रहण करने पर निखार आया ।

प्रश्न 5. डायरी लेखन और ''निबन्ध रचना' के वस्तु शिल्प का मौलिक अन्तर निरूपित कीजिए ।

उत्तर–डायरी लेखन में और निबन्ध लेखन में विषय-वस्तु की दृष्टि से अत्यन्त अन्तर है । जीवनी व्यक्तिगत विषयों पर लिखी जाती है । अपने जीवन की प्रतिदिन की सम्पूर्ण घटनाओं का चित्रण किया जाता है । उसमें व्यक्ति अपने आपको किसी न किसी रूप समाये रखता है । कोई भी घटना हो वह लेखक से अपने आप से जुड़ी रहती है किन्तु निबन्ध किसी भी विषय को नियमबद्ध तरीके से बांधा जाता है या किसी भी विषय पर अपने स्वतन्त्र विचार होते हैं । चाहे वह अपने से सम्बन्ध रखता हो या नहीं । निबन्ध कोई भी लिख सकता है अपने-अपने विचारों से किन्तु डायरी अपने बारे में दूसरा नहीं लिख सकता है । डायरी का क्षेत्र संकुचित होता है किन्तु निबन्ध का क्षेत्र विस्तृत होता है । डायरी एक ही प्रकार से लिखी जाती है किन्तु निबन्ध कई प्रकार के होते हैं । डायरी में अपने ही विचार होते हैं । निबन्धों में अनेक विद्वानों के विचार होते हैं । डायरी की भाषा में कोई परिवर्तन नहीं होता । निबन्ध की भाषा के आलोचना के आधार पर परिवर्तन होते रहते हैं ।

प्रश्न 6. डायरी लिखते समय लेखक ने इस बात का दावा क्यों किया कि वह इस कार्य में अपने आपको अधिक स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत कर सका है ।

उत्तर–डायरी में व्यक्ति अपनी दैनिक दिनचर्या के सम्पूर्ण कार्यों का लेखा-जोखा करता है, चाहे वे अच्छे कार्य हों या बुरे कार्य हों । सुबह से सायंकाल तक क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ हुईं, उन प्रतिक्रियाओं को रात्रि के समय एकान्त में बैठकर लिखता है और उनका निष्कर्ष निकालता है । इस कारण से वह अच्छ तरीके से समाज के सामने प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि वह रात्रि में सोचता है कि मैंने क्या खोया, क्या पाया, इस बात को

सोचकर लिखे गये को पढ़कर बुरे कार्यों की पुनरावृत्ति नहीं करता । इसलिये डायरी एक ऐसा माध्यम है जिससे व्यक्ति अपने आपके स्वाभाविक रूप को दूसरे के सामने प्रस्तुत कर सकता है और गद्य विधाओं में तो फिर कल्पनाशीलता व बनावटीपन आ जाता है किन्तु डायरी में यथार्थों का चित्रण किया जाता है जिससे उज्ज्वल चरित्र का निर्माण होता है और व्यक्ति अपने आपको खुले रूप से सबको समझाने में समर्थ होता है ।

प्रश्न 7. डायरी लेखन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।

उत्तर–डायरी एक संस्मरणात्मक विधा है जिसमें लेखक स्वयं अपने जीवन के विषय में निरपेक्ष होकर लिखता है । डायरी वह साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक अपनी सबलताओं और दुर्बलताओं का सन्तुलित एवं व्यवस्थित चित्रण करता है । डायरी की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) डायरी में व्यक्ति या लेखक स्वयं अपने जीवन की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है ।

(2) यह विवरण क्रमबद्ध शृंखला में पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया जाता है ।

(3) व्यक्ति अपने जीवन की सभी प्रतिदिन की छोटी-मोटी, बड़ी घटनाओं का चित्रण करता है । वह अपने गुण-अवगुणों का तटस्थ होकर चित्रण करता है ।

(4) वह अपने से सम्बन्धित परिवेश को डायरी में उभारता है ।

(5) डायरी संस्मरणात्मक ढंग से लिखी होती है ।

प्रश्न 8. निम्नलिखित वाक्यों का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए—

(अ) कविता गहन भाव विचारों की अथवा गहन क्षणों की सहज वाणी है ।

उत्तर–काव्य की या कविता लिखने की यह विशेषता है कि जब कोई भावनाओं में बहता है और भावों की गहन अनुभूति जब तक कवि भावनाओं से परिपूर्ण नहीं होता तब तक कविता की रचना ही नहीं कर सकता है क्योंकि कविता हृदय को छूने वाली मर्म-स्पर्शी रचना होती है । इसलिए किसी विषय को अपने हृदय से स्पर्श करता है तब ही हृदय से जो आवाज निकलती है या अनुभूति होती है तब ही कविता बनती है ।

(आ) कवि और कलाकार को अपने सृजन को व्यक्तित्व की एकता तो देनी ही चाहिए ।

उत्तर–कवि और चित्रकार में एक-दूसरे की तारतम्यता होती है । चित्रकार जैसे किसी तस्वीर में अपनी कलाकारी के द्वारा रंग भरता है और अपनी कला का कलात्मक सौन्दर्य का चित्रण करता है । वह केवल एक मूर्ति मात्र का निर्माण करता है, उसमें आकर्षण होता है । किन्तु कवि द्वारा उसके रूप सौन्दर्य को अपने शब्दों से रेखांकित किया जाता है । वह इस मूर्ति में जीवन डालकर उसे जीवित करने की कोशिश करता है । किन्तु कवि व चित्रकार दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व के द्वारा चरित्र निर्माण का कार्य करते हैं । दोनों में एकता होती है तब उसमें सजीवता प्रतीत होती है और जीवन डालता है । कवि और कलाकार एक-दूसरे के प्रतिपूरक हैं । दोनों के व्यक्तित्व के अभाव में साहित्य व कला दोनों ही अधूरी हैं । इसलिये साहित्य व कविता कलात्मक सौन्दर्य को प्रकट करने के लिये चित्रकार एवं कवि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । इसलिये दोनों का ही चरित्र उज्ज्वल होना चाहिए ।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

हाँ अथवा नहीं में उत्तर दीजिये–

(क) क्या रिपोर्ताज का यह शीर्षक उचित है ?

उत्तर–हाँ।

(ख) निम्न वर्ग के पात्रों के चित्रण से क्या लोक-ज्ञान की वृद्धि होती है ?

उत्तर–हाँ।

(ग) दूलेखाँ ने बुढ़ापे में शादी कर क्या कोई अच्छा काम किया ?

उत्तर–नहीं।

(घ) क्या 'सूखे चेहरों का भूगोल' एक शिक्षाप्रद रचना है ?

उत्तर–हाँ।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये—

उत्तर–(क) यह वही सिराम है, जिसे रास्ते में चोरी करना अच्छा लगता था।

(ख) जब बनिये-ब्राह्मन कमाने के लिये कलकत्ता-बम्बई आदि बड़े शहरों की तरफ जाते हैं, तो उसे दिसावर जाना कहते हैं।

(ग) राजपूती खून होने के कारण धापली ठकराणी तो बन नहीं सकती थी।

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

3. जिन्दा रहने की इच्छा सब कुछ करा देती है—

(क) दूसरों की हत्या (ख) चोरी-चपाटी

(ग) दया और ममता (घ) बुराई के धन्धे। **उत्तर**–(ख)

4. मनुष्य का आचरण कैसा होना चाहिये ?

(क) स्वार्थपूर्ण (ख) निर्दयी

(ग) समझौतावादी

(घ) 'जियो और जीने दो' की भावना वाला। **उत्तर**–(घ)

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. 'सूखे चेहरों का भूगोल' शीर्षक का क्या तात्पर्य है ? इसमें लेखक क्या प्रतिपादित करना चाहता है ?

उत्तर–'सूखे चेहरों का भूगोल' शीर्षक का तात्पर्य यह है कि भारतीय भौगोलिक स्थति सामान्य रूप से तीन प्रकार की होती है—

(1) जहाँ अतिवृष्टि होती है (2) जहाँ सामान्य वर्षा होती है (3) जहाँ वर्षा न के बराबर होती है, अकाल पड़ता है। जहाँ अकाल पड़ता है वहाँ के व्यक्तियों के चेहरे भूख-प्यास से सूख जाते हैं। इसलिये इस रिपोर्ताज में वहाँ के लोगों का चित्रण किया गया है जहाँ अकाल पड़ता है। इसलिये इसका नाम सूखे चेहरों का भूगोल रखा गया है।

जहाँ अकाल पड़ता है वहाँ के लोगों व आस-पास के क्षेत्रों के लोगों के व्यवहार का, वहाँ घटने वाली घटनाओं का चित्रण किया गया है कि जो लोग वहाँ से बड़े शहरों में धन कमाने के लिये जाते हैं उन्हें दिसावर कहते हैं। जो इधर-उधर भूख-प्यास के कारण घूमते हैं, मऊ कहा जाता है। लूटपाट का काम करते हैं वे धाड़ेती कहलाते हैं। वहाँ के

क्षेत्रीय लोगों पर कई प्रकार के व्यंग्य किये गये हैं । इसके माध्यम से मधुकरजी यह कहना चाहते हैं कि इन क्षेत्रों में शिक्षा का विकास करके सभ्य बनाकर इनकी कमियों को दूर करके इनका सर्वांगीण विकास करना चाहिए ।

प्रश्न 2. लेखक ने इस रिपोर्ताज में किन-किन पात्रों के जीवन के रिपोर्ताज प्रस्तुत किये हैं ? उनके नाम लिखिए ।

उत्तर–मधुकरजी ने इसमें अनेक पात्रों का चित्रण किया है जो निम्न हैं—सीराम, लेखक, तीजण, नेवगिया, सुरती ठकुराइन, दूल्हे खाँ, धापली, धीराणी, रूघजी ठाकर, पंडितजी, स्यौती, दाखाँ, डाकू, मोबत, पुलिसीये आदि पात्र हैं ।

प्रश्न 3. लेखक ने अपने परिवेश के निम्न वर्ग के पात्रों को ही अपने रिपोर्ताज के लिये क्यों चुना है ?

उत्तर–लेखक ने अपने परिवेश के निम्न वर्ग के पात्रों को अपने रिपोर्ताज में इसलिये चुना है कि रिपोर्ताज का शीर्षक है 'सूखे चेहरों का भूगोल' और उन्हीं व्यक्तियों के चेहरे सूखते हैं जो अकाल से पीड़ित होते हैं । अकाल से निम्न वर्ग के व्यक्ति दु:खी होते हैं, उच्च वर्ग के व्यक्तियों पर अकाल का कोई प्रभाव नहीं होता है । वे तो बल्कि निम्न वर्ग के व्यक्तियों का शोषण करते हैं । इसलिये जो चेहरे सूखते हैं वे निम्न वर्ग के व्यक्तियों के सूखते हैं । इसलिये मधुकरजी ने इस रिपोर्ताज में निम्न वर्ग के व्यक्तियों को ही अपना पात्र चुना है जिससे लोगों के मन में उनके प्रति दया, ममता, सहानुभूति, आपसी सहयोग की भावना जाग्रत हो सके ।

प्रश्न 4. रिपोर्ताज के आधार पर राजस्थान के निम्न वर्ग की आर्थिक दशा तथा उनकी मानसिकता के मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालिये ।

उत्तर–सूखे चेहरों का भूगोल रिपोर्ताज में मधुकरजी ने वहाँ के लोगों का चित्रण किया है जहाँ भूगोल की दृष्टि से वर्षा नहीं होती, जहाँ अकाल पड़ता है । इसलिये वहाँ के लोगों को निम्न वर्ग के लोग कहा जाता है । वहाँ के लोगों की दशा शोचनीय होती है और दयनीय होती है । उनकी आर्थिक स्थिति खराब होती है । वहाँ के क्षेत्र में अधिकतर अकाल पड़ता रहता है इसलिये अपनी व परिवार की आजीविका कमाने के लिये शहरी क्षेत्रों में जाते हैं । लोग इन्हें दिशावर कहते हैं । कुछ लोग अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिये इधर-उधर आजीविका कमाने के लिये घूमते रहते हैं जिन्हें लोग 'मऊ' कहते हैं । कभी-कभी वर्षा होने के कारण खेती उत्पन्न होती है तो भी वहाँ की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं होता क्योंकि वहाँ धाड़ेती (डाकू) होते हैं, जो उनका अनाज लूट ले जाते हैं इसलिये यही कहा जाता है कि इस रिपोर्ताज में निम्न वर्ग के लोगों का चित्रण किया गया है जिनकी आर्थिक दशा बेकार है । देश की सरकार भी उनकी दशा को सुधारने का कोई प्रयत्न नहीं कर रही है अपितु उनके नाम पर राजनेता व प्रशासनिक अधिकारी उनका पैसा हड़प जाते हैं क्योंकि वहाँ के व्यक्तियों में शिक्षा का अभाव होता है ।

प्रश्न 5. लेखक और सिराम के पारिवारिक सम्बन्ध कैसे थे ? उन पर टिप्पणी लिखिए ।

उत्तर–लेखक व सिराम का घर एक ही गाँव में था । वे एक-दूसरे के पड़ौसी थे । उनके खेत एक-दूसरे के पास थे । सिराम पढ़ नहीं सकता था किन्तु लेखक पढ़ा-लिखा विद्वान हो गया था । इसीलिये अब सिराम उससे बात करते हुए भी कतराता है । दोनों

पड़ौसी होने के कारण एक-दूसरे के दु:ख-दर्द में सहायक थे। वह उसे जेन्टलमेन कहकर चिढ़ाता था। लेखक उसे अकड़ू प्रवृत्ति का कहता था। सिराम लेखक की बहुत इज्जत करता था। सिरांम का परिवार लेखक के परिवार का सम्मान करता था। लेखक का परिवार उनका सहयोग करता था। उनके दु:ख-दर्द में सहायता करता था। वे दोनों बचपन के अच्छे मित्र थे।

प्रश्न 6. नेवगिया और जुगती के पारिवारिक जीवन की मस्ती पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर–नेवगिया मजबूत काठी का पट्ठा है, अलमस्त है, जाति से खाती है, अच्छा कारीगर किन्तु डरपोक प्रवृत्ति का है। रावले की सुरती ने एक बार दरवाजे के किवाड़ों की जोड़ी ठीक करवाने के लिये नेवगिया को बुलाया, सुरती बाल्टी उठाकर बाजू के कुण्ड से पानी लाने चली गयी। नेवगिये ने आरी जोर से चलायी तो वह पीछे आलमारी से जा टकराई, उस पर सन्दूक नीचे गिर पड़ा, उसमें से काँच का सामान टूट गया। नेवगिया घबराया। हड़बड़ाकर उठा तो छींके से टकराया, दही की हाँडी गिरकर टूट गयी। वह ज्यादा घबराया, आरी फेंककर भाग गया। नेवगिया गली में आया। जान बचाकर भागना चाहता था, सुरती बीच में मिल गयी। पूछा क्यों रे खाती किवाड़ सही हो गये।

नेवगिया हाँ-हूँ करने लगा। सुरती ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, चल घर, तुझे मजदूरी का अनाज दे दूँ। नेवगिया ने उससे पीछा छुड़ाकर हाथ छुड़ाना चाहा। हाथ को झटका दिया। उसकी बाल्टी गिर गयी, कपड़े भीग गये, चूड़ियों के टुकड़े हो गये। सुरती ने क्रोध में कहा, मर नासपीटे तुझे रो लूँ। नेवगिया ने भागते हुए कहा कि अभी क्या रोयेगी रोयेगी तो घर जाकर। उसकी पत्नी नेवगिया से यही दिलचस्प प्रसंग सुनाती है और हँसने लगती है। नेवगिया उसे फटकारता है। इस प्रकार दोनों में मस्ती होती थी।

प्रश्न 7. लेखक ने दूलेखाँ और बानो तथा रुघजी ठाकर और धापली धीराणी के विवाह सम्बन्ध के घटनाक्रम को किस प्रकार के हास्य व्यंग्य की शैली में प्रस्तुत किया है ?

उत्तर–धानकों के गाँव में दूले खाँ की कोटड़ी थी। उसका निशाना बहुत तेज था। उसके पास मरियल सी घोड़ी थी। लोग उसे दूले खाँ की घोड़ी कहकर चिढ़ाते थे। उसके पास सब कुछ था लेकिन बुढ़ापे तक विवाह नहीं हुआ। एक बार एक ढाणी में गये। बुढ़ापे में एक व्यक्ति साठ-गाँठ करके विवाह रचाकर आये तो उनके एक दाँत ही मुँह में शेष बचा था तो वह एक दाँत वाले की बड़ाई करने लगा। उसके जवाब में बानो बोली, मुँह में हाड़ का क्या लाड़ ? जब वह सुहागरात पर पहुँचा तो उसके एक दाँत भी नहीं था। वह बूढ़ी डोकरी थी। उसकी यह हालत हो गयी काटो तो खून नहीं। दो-ढाई साल में बानो मर गयी। दूले खाँ अपना जीवन वैसे ही बिताने लगा।

उसी प्रकार रघुजी ठाकुर की बात है। वे खारियावास गये। वहाँ नाई की छोटी धापली उनके मन को भा गई। वे उसे ले आये। वह नीच जाति की थी। लोग उसे ठकुराइन न कहकर धीराणी कहते थे। उसने 18 बच्चों को जन्म दिया। 60 वर्ष पूरे होने पर भी वह हृष्ट-पुष्ट थी। वह जहाँ जाती थी तो बन-ठन कर निकलती थी। रूघजी ठाकुर जब तक जिन्दा रहे तब तक उसका सम्मान होता रहा। उनके मरने के बाद तो लोग उस पर कई

प्रकार के बेबुनियादी आक्षेप लगाने लगे। लोगों ने डायन (डाकण) तक की उपमा दी। उसने किसी भी परिस्थिति में गाँव को नहीं छोड़ा।

प्रश्न 8. क्या रिपोर्ताज की नवीन विधा को रेखाचित्र अथवा संस्मरण का ही विलायती रूप कहा जा सकता है।

उत्तर–रिपोर्ताज शब्द मूलत: फ्रांसीसी भाषा से आया है। इसका सम्बन्ध रिपोर्ट से है। रिपोर्ताज की रचना विशुद्ध साहित्यिक वातावरण में होती है। सामान्य रूप में किसी घटना का यथातथ्य ऐसा वर्णन; जो पाठक को प्रभावित करने की क्षमता रखता हो, रिपोर्ताज कहलाता है। कल्पना के अभाव में इसकी सृष्टि संभव नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि आँखों देखी घटना को रोचक तरीके से चित्रण करना रिपोर्ताज कहलाता है जिसमें आकर्षण हो। लेखक रिपोर्ताज अपने साहित्यिक रूप में देश में दिन-प्रतिदिन होने वाली, घटने वाली किसी भी घटना का चित्रण पाठकों के सामने रख देता है। रिपोर्ताज के लिखने में लेखक को अपने उत्तरदायित्वपूर्ण पद के गौरव के अनुरूप ही शब्द भाव तथा पृष्ठभूमि का निर्माण करना होता है।

रेखाचित्र वस्तुत: एक शब्द-चित्र है, रेखा-चित्रकार साहित्यकार के साथ-साथ चित्रकार भी होता है। अत: रेखाचित्र में हमें साहित्यिकता और कलात्मकता का अनुपम संयोग देखने को मिलता है। रेखाचित्र एक ऐसी घटना के लिये प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ हों पर मूर्त रूप नहीं अर्थात् पूरे उतार-चढ़ाव के साथ दूसरे शब्दों में कथानक का उतार-चढ़ाव आदि उसमें हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी घटना को कल्पना के आधार पर रेखांकित करना रेखाचित्र कहलाता है जिसे पढ़ने पर कल्पना का आभास न हो।

संस्मरण का शाब्दिक अर्थ है सम्यक् स्मरण। जब हम किसी व्यक्ति, घटना अथवा दृश्य का स्मरण करके अपने अनुभवों को लिखते हैं तो वह लेखन संस्मरण कहलाता है। इसमें प्राय: कथा शैली का प्रयोग किया जाता है। संस्मरण में केवल कुछ चुने हुए लोगों के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन होता है। ये घटनाएँ वे ही होती हैं जिनसे लेखक प्रभावित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्मरण वह कहलाता है जिसमें लेखक के जीवन की उस घटना का चित्रण किया जाता है, जिसे भुलाये भुलाया नहीं जा सकता है तथा जो कभी भी पुन: स्मरण हो सकती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यंही कहा जा सकता है कि रिपोर्ताज, संस्मरण व रेखाचित्र की घटनाक्रम का विलायती नाम ही है।

---

13. देवताओं के अंचल में

(सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय')

लेखक-परिचय–सच्चिदानंद वात्स्यायन ''अज्ञेय'' का जन्म देवरिया (उत्तर प्रदेश) के कसिना नामक ग्राम में 7 मार्च, सन् 1911 को हुआ। इनके पिता श्री हीरानन्दजी एक सुप्रसिद्ध पुरातत्वविद् थे जिनके संस्कारों और अभिरुचि का प्रभाव इन पर बहुत अधिक

पड़ा। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरु परम्परा से हुई। इन्होंने लखनऊ, बिहार तथा श्रीनगर (जम्मू) में रहते हुए हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी साहित्य का अच्छा अध्ययन कर लिया। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध चलने वाले आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण इन्हें अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। सन् 1930 में वे ब्रिटिश सरकार द्वारा चार वर्ष तक कारावास में भी रखे गये। अपनी साहसी एवं धैर्यशाली प्रवृत्ति के बल पर जूझते हुए इन्होंने अनेक संघर्ष पार किये और अपने जीवन में कभी हार स्वीकार नहीं की। उनकी जीवनधारा की भाँति उनकी काव्यधारा भी अनेक नई-नई राहें खोजने में लगी रही जिसका प्रमाण उनके द्वारा लिखित साहित्य, ग्रंथ और काव्यकृतियाँ स्वतः दे रही हैं।

इनका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी रहा है। कवि, लेखक, विचारक, सम्पादक और समीक्षक के रूप में इनका अप्रतिम महत्त्व है। इनके नये वस्तु-शिल्प के 'नदी का द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' नामक उपन्यास परिचायक हैं। यात्राप्रिय होने के कारण इन्होंने "अरे यायावर रहेगा याद" शीर्षक से अपनी यात्राओं के वृत्तांत लिखे हैं जिनमें प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—त्रिशंकु, सबरंग, आत्मनेपद, आलबाल, भवंती, अंतरा, अद्यतन, संवत्सर, शाश्वती, हिन्दी साहित्य : एक परिदृश्य आदि।

काव्य-संकलन—हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे, आँगन के पार द्वार, सुनहले शैवाल, सागरमुद्रा।

कहानी-संग्रह—त्रिपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, लौटती पगडंडियाँ, छोड़ा हुआ रास्ता आदि।

पाठ-परिचय—अज्ञेयजी ने इस यात्रावृत्त में अपनी भ्रमणशील प्रवृत्ति का सजीव परिचय दिया है। इसमें अज्ञेयजी ने हिमालय प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त स्थानों में कुल्लू, मनाली और कटरा का वर्णन किया है।

अज्ञेयजी लाहौर से यात्रा प्रारम्भ करके पठानकोट पहुँचे, वहाँ से पालमपुर, काँगड़ा, बैजनाथ आदि स्थानों को पार करते हुए जोगेन्द्र नगर पहुँचे। वहाँ से मंडी वाली बस में बैठकर देवताओं के अंचल कुल्लू के लिए रवाना हुआ। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर हतप्रभ हो गया। उसे देखकर लाहौर की यादें समाप्त हो रही थीं। वहाँ की यात्रा अत्यन्त जटिल थी। मंडी पहुँचकर वहाँ रुकने की योजना बनाई। वहाँ लकड़ी के मकान में रुके जिसके दरवाजों पर किवाड़ भी नहीं थे। वहाँ विश्राम करने के बाद, देवताओं के अंचल कुल्लू की यात्रा प्रारम्भ की। वहाँ बहुत धीरे-धीरे चलना पड़ता है। साहसी व्यक्ति ही उस यात्रा को पूरी कर सकता है। वहाँ एक रास्ता शिमला को जाता है, दूसरा रास्ता मनाली को जाता है। एक रास्ता वहाँ से मणिकर्ण तीर्थ स्थान को जाता है। कुल्लू प्राचीन हिन्दू सभ्यता का गहवारा है। वहाँ पर कई देवी-देवताओं के मन्दिर हैं जिनके मेले भरते हैं, उत्सव मनाये जाते हैं। कुल्लू में देव सम्मेलन भी होते हैं। यहाँ देवी-देवता, ऋषि-मुनियों की पूजा होती है। यहाँ विजयदशमी का त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस समय में कई प्रकार के बाजार लगते हैं जिनमें कई प्रकार की वस्तुएँ बेची जाती हैं। सम्पूर्ण वातावरण जगमग होता है।

वहाँ से अज्ञेयजी ने साथियों के साथ कटरा की यात्रा प्रारम्भ की। वहाँ की वनस्पतियाँ एवं जलजीवों को देखा। कटरा से मनाली के लिए रवाना हुए। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखा। वहाँ की सेब और नाशपाती विश्व में प्रसिद्ध है। कश्मीरी

सेब, कश्मीरी नाशपाती यहाँ का स्वादिष्ट एवं आकर्षक फल है। इस प्रकार अज्ञेयजी ने हिमालय के क्षेत्र की यात्रा पूर्ण की। अपने लाहौर में पहुँचकर आभास किया कि जहाँ से मैं निकला, हीरा बनने का सपना देखा परन्तु मैं तो वापस पहुँचकर गुदड़ी का लाल ही रहा किन्तु हिमालय की सुन्दरता को भुला नहीं पाया।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न-

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए—

1. देवताओं के अंचल में क्या है ?

(क) यात्रावृत्त (ख) संस्मरण

(ग) जीवनी (घ) विचारपरक निबन्ध।

उत्तर-(क) यात्रावृत्त।

2. देवताओं का अंचल किस प्रदेश में अवस्थित है ?

(क) राजस्थान में (ख) तिब्बत में

(ग) हिमाचल प्रदेश में (घ) बिहार में।

उत्तर-(ग) हिमाचल प्रदेश में।

3. मंडी के राजा सुबह-शाम बैंड बजाते हैं क्योंकि—

(क) वे सूर्यवंशी हैं

(ख) सूर्य का स्वागत करने और उसे विदाई देने के लिए

(ग) यह उनकी वंश परम्परा है

(घ) रूढ़ियों की लकीर पीटते हैं।

उत्तर-(ख) सूर्य का स्वागत करने और उसे विदाई देने के लिए।

4. मनाली (मुनाली) नाम का कारण क्या है ?

(क) वहाँ मुनाल नाम का पक्षी बहुतायत से पाया जाता है।

(ख) वहाँ मुनाल जाति के लोग रहते हैं।

(ग) मुनाल नाम के पर्वत के कारण।

(घ) यह परम्परा से चला आया है।

उत्तर-(क) वहाँ मुनाल नाम का पक्षी बहुतायत से पाया जाता है।

5. मनाली को महत्त्व किसलिए दिया जाता है—

(क) वहाँ सेवों के बगीचे हैं

(ख) वहाँ के जंगलों में देवता निवास करते हैं

(ग) वहाँ की प्रकृति मनमोहिनी है

(घ) वह एक सैर-सपाटे की जगह है।

उत्तर-(क) वहाँ सेवों के बगीचे हैं।

6. अज्ञेयजी ने यह यात्रा क्यों की ?

(क) अपना दु:ख भुलाने के लिए

(ख) नवलेखन की प्रेरणा पाने के लिए

(ग) प्रकृति के बीच घूमने की अभिरुचि होने के कारण

(घ) खाली समय काटने के लिए।

उत्तर–(ग) प्रकृति के बीच घूमने की अभिरुचि होने के कारण।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. देवताओं के अंचल से क्या अभिप्राय है और लेखक ने अपने यात्रा वृत्तान्त के लिए यह शीर्षक क्यों चुना है ?

उत्तर–कुल्लू के क्षेत्र में हिन्दू सभ्यता के प्रतीक के रूप में देवताओं का अंचल है। यहाँ के प्रत्येक ग्राम व कस्बे में अपने-अपने देवता हैं। वहाँ अनेक देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। वहाँ के लोग देवताओं की उपासना करते हैं। वहाँ देवों के लिए सम्मेलन होते हैं। भारत में आर्य धर्म प्रचलित है जिसे हिन्दू धर्म के रूप में जाना जाता है। वहाँ देवताओं का निवास है, इसलिए कुल्लू क्षेत्र का नाम देवताओं का अंचल पड़ा है। हिन्दू लोग देवी-देवताओं को अपना प्रतीक मानते हैं, इसीलिए लेखक ने यह शीर्षक चुना है।

प्रश्न 2. अज्ञेय को अपनी यात्रा के मार्ग में कौन-कौनसे मनोरंजक दृश्य देखने को मिले ?

उत्तर–अज्ञेयजी ने अपनी यात्रा के मार्ग में मंडी हाइड्रो-इलेक्ट्रिक स्कीम का केन्द्र देखा। कुल्लू (देवताओं का अंचल) देखने के लिए रवाना होकर रास्ते के प्राकृतिक सौन्दर्य के दृश्यों को देखा और सायंकाल के समय मंडी पहुँचा। वहाँ के मन्दिरों और महलों को देखकर व्यास नदी के सहारे-सहारे कुल्लू के स्थानों को देखा। वहाँ के देवी-देवताओं के मनोरंजक मन्दिरों को देखा। वहाँ से कटरा के सौन्दर्य को देखकर मनाली के क्षेत्रों को देखा और वहाँ के सेबों और नाशपाती के बागों को देखा। इन दृश्यों ने लेखक का मन मोह लिया।

प्रश्न 3. इस यात्रा का लेखक के मन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर–इस यात्रा में लेखक ने हिमालय के प्राकृतिक व सांस्कृतिक सौन्दर्य को देखा तो वह अपने क्षेत्र के सम्पूर्ण दृश्यों को भूल गया। इसके बाद यात्रा को पूर्ण करके वापिस लौटने पर सोचा कि मनाली स्थिति के कारण ही नहीं, सौन्दर्य के कारण भी देवताओं के अंचल का सुनहरा ऊपरी छोर है। दृष्टि क्षेत्र में सीखचे देखने की आदी मेरी आँखें इस विराट् सौन्दर्य को पीती जाती थीं और मानो अपने पर विश्वास नहीं कर पाती थीं। सीखचों का संसार इतना गहरा पड़ गया था कि मैं बाहर बिखरी हुई सौन्दर्य राशि को देखकर भी भीतर से बन्दी जीवन की पुरानी-पुरानी स्मृतियाँ निकालता जाता था। जैसे शाही पोशाक में लिपटकर भी भिखमंगा अपनी फटी हुई और थिगरों से भूषित गुदड़ी को नहीं भूलता। लेकिन मनाली ने मानो उन स्मृतियों पर अपनी छाप डाल दी। वे अपने आप में कटु स्मृतियाँ मानो सुन्दरता के एक ढाँचे में ढलकर निकलने लगीं। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक बार-बार अतीत की स्मृतियों में खोने लगा था।

प्रश्न 4. दशहरे के अवसर पर लगने वाले मेले में कुल्लू की शोभा किस प्रकार बढ़ जाती है ?

उत्तर–देवताओं के अंचल में दशहरे के दिन विजयी राम का जो उत्सव होता है उसमें आस-पास के सब देवी-देवता रथों में बैठाकर लाये जाते हैं। उसमें हमें इसी प्राचीन विजय का सांकेतिक रूप दिखता है। जिस तरह देवताओं का अधीनत्व शायद उन देवताओं

को पूजने वाली जाति के अधीनत्व का संकेत माना गया। रामायण में लंका विजय के बाद देवताओं को अपने-अपने विमानों में बैठकर "सलामी देने" आना भी यही भाव व्यक्त करता है। खैर, कुछ भी हो, इस विराट् उत्सव में ऐसा सुनने में आता है, हजार-हजार तक देवता शामिल होते हैं।

दशहरे के अवसर पर यहाँ बड़ा भारी मेला भी लगता है। सालभर का व्यापार प्राय: इस एक दिन में हो जाता है—बाहर से आये हुए यात्रियों के लिए बनी हुई देशी-अंग्रेजी दुकानों और कुछ होटलों या पंसारी-हाट की बात अलग है—इसलिए यहाँ ग्राहक और विक्रेता दोनों ही बड़ी उमंगें लेकर आते हैं। रंग-बिरंगे कम्बल, पट्ट-पट्टियाँ, पश्मीना, "चुरु" और अन्य प्रकार की खालें—रीछ की, मृग की, तेंदुए की, कभी-कभी बर्फ के बाघ की—तरह-तरह के जूते, मौजे, सिली-सिलाई पोशाकें, टोपियाँ, बाँसुरी, बर्तन, पीतल और चाँदी के आभूषण, लकड़ी, हड्डी और सींग की कंघियाँ, देशी और विदेशी काँच, बिल्लौर और पत्थर के मनकों के हार—न जाने क्या-क्या चीजें वहाँ आती हैं और देखते-देखते बिक जाती हैं—दिनभर में हजारों की सम्पत्ति हाथ बदल लेती है—तमाशे होते हैं, नाच होते हैं, गाना-बजाना होता है। जगमग रोशनी होती है। इसी कारण से कुल्लू की शोभा अत्यन्त बढ़ी हुई रहती है।

प्रश्न 5. 'मनाली' नाम पड़ने का क्या कारण है ? उस स्थान की कुछ विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–मनाली या मुनाली का यह नाम मुनाल नामक पक्षी से पाया, जो यहाँ बहुतायत से होता है। हिमालय का फेजेंट जाति का पक्षी अत्यन्त सुन्दर होता है। इसके सम्बन्ध में यहाँ के लोगों में कई किंवदन्तियाँ भी सुनने में आती हैं।

लेकिन समतल भूमि पर रहने वाले लोग मनाली को वहाँ के सेबों के कारण ही जानते हैं। सेब और नाशपाती के लिए मनाली शायद संसार में सबसे बढ़िया स्थान है। यहाँ के फलों के सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं होता, न उस ढंग का संगठित काम होता है, जैसा कि अमेरिका के केलिफोर्निया आदि फलप्रद इलाकों में; फिर भी यहाँ के बग्गूगोशे (एक विशेष प्रकार की रसीली नाशपाती) और यहाँ के गिलास (चेरी) अपना सानी नहीं रखते। सिर्फ मीठे को ही स्वाद गिनने वाले लोग कश्मीर के अमरी सेबों को पसन्द करते हैं, लेकिन कुल्लू के खट्टे-मिट्ठे खस्ता सेब, जो मनाली में होते हैं, अपने विशेष स्वाद और खुशबू से जो अपूर्व रस पैदा करते हैं, उसकी तुलना किसी चीज से की जा सकती है तो अनिर्वचनीय काव्य रस से ही। अभी हाल में कुछ ध्यान अन्वेषण और प्रयोग की ओर भी जाने लगा है और इसका एक परिणाम यह हुआ कि जापानी परसिमन यहाँ पर पैदा होने लगा है। कहते हैं कि शीघ्र ही मनाली का जापानी फल जापान को मात कर देगा। मनाली स्थिति के कारण ही नहीं, सौन्दर्य के कारण भी देवताओं के अंचल का सुनहला ऊपरी छोर है।

प्रश्न 6. प्राकृतिक स्थलों की यात्राएँ करने से हमारे मानस पर कैसा प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर–यदि हम प्राकृतिक स्थलों की यात्रा करते हैं तो हममें प्रकृति के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है और बार-बार ऐसे दृश्यों को देखने के लिए मन लालायित रहता है। मानव में प्रकृति के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। मानव का मन व स्वास्थ्य ठीक रहता है।

प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के मूल्यों को समझता है और मानव से उसको जोड़ने का सफल प्रयास करता है। प्राकृतिक दृश्यों को देखने के बाद मानव प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसके साथ जीने का प्रयास करता है। उसे अपने जीवन में उतारने की कोशिश करता है और प्रकृति के अनुसार अपने आपको ढाल लेता है। यदि कोई मानव प्रकृति प्रेमी हो और वह प्राकृतिक दृश्यों को देखे तो वह इसी अवसर की तलाश में रहेगा कि कब मुझे अवसर मिले और कब उस दृश्य को दुबारा देखूँ। एक बार देखे हुए दृश्य को बार-बार देखकर अपनी आत्मा की सन्तुष्टि करता है और उसकी भ्रमणशीलता की प्रवृत्ति हो जाती है और प्राकृतिक दृश्य उसे स्वर्ग से भी सुन्दर प्रतीत होते हैं। वह प्रकृति प्रेमी हो जाता है, उसका वह सजीव चित्र अंकित करता है।

प्रश्न 7. अपने जीवन की किसी एक ऐसी यात्रा का वर्णन कीजिए जो आपको सबसे अधिक प्रिय और रुचिकर लगी हो।

उत्तर–यों तो मनुष्य घूमने-फिरने का शौकीन होता ही है पर हर समय उसे विशेष आनन्द प्राप्त नहीं होता। कभी-कभार ऐसे भी प्रसंग होते हैं जिनमें कि वह यात्रा उसके लिए सदैव स्मरणीय बन जाती है।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना यात्रा है; परन्तु निरुद्देश्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक भटकना यात्रा नहीं है। यात्रा में स्थान परिवर्तन के साथ कोई निश्चित उद्देश्य या प्रयोजन अवश्य होता है। नवीन स्थानों तथा ऐतिहासिक स्थानों का दर्शन, ज्ञान वृद्धि के लिए, भ्रमण अथवा व्यापार विकास आदि के लिए की गई यात्रा ही वास्तविक यात्रा है। बिना उद्देश्य के कोई यात्रा नहीं होती है।

यात्रा से पूर्व उसके लिए प्रबन्ध व पूर्ण तैयारी करनी पड़ती है। हमारी कक्षा में भी छात्रों ने एक बार झीलों की नगरी राजस्थान का कश्मीर उदयपुर की यात्रा करने का विचार किया। प्रधानाध्यापक महोदय की स्वीकृति ली गई और हम एक अध्यापक-अध्यापिका अविनाश-अमृता महोदय-महोदया की देखरेख में यात्रा की तैयारी करने लगे। सबसे पहले हमने रेल का कन्सेशन बनवाया। बिस्तर, खाने का थोड़ा सामान, प्रारम्भिक चिकित्सा की कुछ दवाएँ, मार्ग में पढ़ने को एक-दो मनोरंजक व शिक्षाप्रद पुस्तकें आदि लेकर हम यात्रा के लिए तैयार हो गये।

सब विद्यार्थी निश्चित समय पर स्टेशन पहुँच गये। वहाँ बड़ी भीड़ थी। रेल अभी आई नहीं थी। लाल साफा व नीली कमीज पहने कुली भार को लादे हुए इधर-उधर भाग रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति रेल में बैठने को उत्सुक व आतुर था। हम थोड़े इधर-उधर टहल पाये थे कि भीमकाय गाड़ी सीटी लगाती हुई तथा छुक-छुक करती हुई सामने आ खड़ी हुई। उस समय हम सभी विद्यार्थियों को यह चिन्ता थी कि इतनी भीड़ में गाड़ी में कैसे बैठा जावे ? परन्तु दूरदर्शी व चतुर अध्यापक महोदय ने हमारा रिजर्वेशन करा लिया था अतः सारी परेशानी से हम बच गये और हमें बड़ी सुविधा से रेल में स्थान मिल गया। दो-चार अन्य यात्री भी डिब्बे में आकर बैठ गये। पहले तो हमने उनको डिब्बे में आने नहीं दिया, परन्तु अध्यापक महोदय ने कहा कि यदि यात्रा में तुमने अपना दृष्टिकोण संकुचित रखा और अपने ही स्वार्थ की चिन्ता की तो यात्रा आनन्दरहित हो जायेगी।

जब हम रेल में बैठकर जयपुर से उदयपुर जा रहे थे तो मार्ग में अजमेर और चित्तौड़ गाड़ी बदलनी पड़ी, क्योंकि मारवाड़ जंक्शन होकर हमारा वापिस आने का विचार

था। गाड़ी में हमारे साथ जयपुर से दो-चार व्यक्ति बैठे, उनमें से एक ग्रामीण वृद्ध कहने लगा, "बाबूजी मूँ तो टिकस ही कोनी लियो।" ग्रामीण की इस बात से हम खिल-खिला पड़े। मार्ग में अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता करते-करते अजमेर पहुंचे। अजमेर में एक दूसरी रेल में बैठे तो वहाँ एक सामान नीलाम करने वाला व्यक्ति हमारे डिब्बे में आ गया। वह अपनी रोचक भाषाशैली में नीलाम की वस्तुओं को बेचकर हमें ठगने की कोशिश में था। परन्तु हमारे अध्यापक महोदय ने उसे खूब छकाया। जब वह चला गया तब उन्होंने नीलाम से सम्बन्धित दो-चार मनोरंजक कहानियाँ सुनाईं। रेल के चितौड़ के समीप पहुँचने पर हमारे अध्यापक-अध्यापिका ने चित्तौड़गढ़ की कहानियाँ सुनाईं। वीरता और बलिदान की कहानियाँ सुनकर हम चित्तौड़ का किला देखने गये—जय स्तम्भ; मान स्तम्भ, मीराँ का मन्दिर, सरोवर व पद्मिनी के महल वहाँ के दर्शनीय स्थल हैं। दूसरे दिन रेल में बैठकर हम उदयपुर की ओर रवाना हुए। मार्ग में पहाड़ों को काट-काटकर बनाई गई सुरंगों में प्रवेश करने से पूर्व रेल ने सीटी लगाई तो हम सब सचेत हो गये। इतनी लम्बी सुरंगों अर्थात् घोर अन्धकार से पूर्ण मार्गों को देखकर हम आश्चर्यचकित रह गये।

उदयपुर की स्थिति सामरिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। चारों ओर से ऊँची-ऊँची पर्वतमालाओं से घिरा यह नगर राजस्थान का कश्मीर है। यहाँ के उद्यान, सरोवर, राजमहल, राजमार्ग व यशोगाथायें किसके मन को आकर्षित नहीं करतीं। राजमहल के समीप पिछौला नामक विशाल झील की सैर हमने नाव में बैठकर की। उस नाव में इंजन लगा हुआ था अतः नाव और जलपोत का हमने एक ही साथ आनन्द लिया। जग मन्दिर, जय निवास, सहेलियों की बाड़ी की शोभा देखकर हम दंग रह गये। सरोवर में स्थित सुन्दर भव्य भवन कारीगरी व सौन्दर्य में बेजोड़ है। उदयपुर तो वास्तव में झीलों व पहाड़ों का ही नगर है। राजमहल के सूरजपोल का दृश्य तो बड़ा भव्य था। उदयपुर की शिक्षण संस्थाओं को भी देखने का हमें अवसर मिला।

तीन दिन उदयपुर रहकर चौथे दिन हमने वापिस आने का विचार किया। अध्यापक, अध्यापिका महोदया की सम्मति से अब की बार हमने मोटर से यात्रा की। मार्ग में एकलिंगजी, हल्दीघाटी चेतक की समाधि, काँकरोली व राजसमन्द को देखने का अवसर मिला। हल्दीघाटी की वीर भूमि को हम सबने प्रणाम किया, चेतक को श्रद्धा से शीश नवाया और एकलिंगजी पुष्पों से ढकी मूर्ति को साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। नाथद्वारा में श्रीनाथ जी की आरती व भक्तजनों की भक्तिविह्वल हृदयों की उमंग देखकर हमने भक्ति के महत्त्व को भी समझा। काँकरोली के राजसमन्द में हम खूब तैरे, परन्तु मगर आदि भयानक जन्तुओं का भय होने से हम अधिक दूर नहीं गये। पहाड़ी के शिखरों और सरोवरों के किनारे पर स्थित ये मन्दिर स्थापत्य कला के तो आदर्श हैं ही, परन्तु इनकी मूर्तियों में जड़े हुए चमचमाते हुए हीरे और पहाड़ों पर ही वर्षा के जल को एकत्रित कर बनाये गये टाँके हमारे लिए सर्वथा नये थे। मार्ग में ब्यावर, अजमेर व पुष्कर देखते हुए हम वापिस जयपुर पहुँचे।

इस यात्रा में बहुत आनन्द मिला। ज्ञान व बुद्धि के साथ-साथ प्राचीन राजपूत वीरों के पदचिन्हों व त्याग द्वारा पवित्र की गई भूमि के दर्शनों से सुप्त सौर्य जाग्रत हो गया। पद्मिनी व पन्नाधाय के जौहर और बलिदान की कथाओं से वीर माताओं के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई। धार्मिक भक्ति-भावना का रहस्य समझ में आया। राजस्थान प्रान्त का ज्ञान हुआ। उदयपुर

(मेवाड़) के रीति-रिवाज, वेशभूषा, बोली, रहन-सहन आदि का परिचय हुआ। मेवाड़ी बाँकी पगड़ी और एकलिंगजी का सिंहासन, पद्मिनी के महल, हल्दीघाटी, ख्वाजा साहब की दरगाह व पुष्कर के ब्रह्माजी व रंगनाथजी के मन्दिर तो स्मृति में स्थायी हो गये। कुछ का रहस्य ही जान पाये। जैसे पुष्कर का पानी बादलों की गर्जना से ऊपर उठता है। ढाई दिन का झोपड़ा। इसलिए बार-बार उस अविस्मरणीय यात्रा की स्मृति आती है और इच्छा होती है कि इन रहस्यपूर्ण वस्तुओं को समझने के लिए फिर यात्रा की जाये।

प्रश्न 8. इस पाठ के आधार पर अज्ञेयजी की भाषा-शैली तथा निबंध कला पर एक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर–हिन्दी में प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक और उन्नायक तथा कथा-साहित्य और गद्य विधाओं को नया वस्तु-शिल्प प्रदान करने में अज्ञेयजी का स्थान अग्रणी है। इन्होंने साहित्य क्षेत्र में प्रेरित होकर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। इस कारण से इनको कई यातनाएँ झेलनी पड़ीं। इनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी रहा है। 'तार सप्तक' नामक काव्य संकलन के अनेक भाग प्रकाशित कर इन्होंने अपनी सम्पादन कला का परिचय दिया है।

अज्ञेयजी ने देवताओं के अंचल में हिमालय के अनेक क्षेत्रों का विवेचन प्रस्तुत किया है और इस यात्रावृत्त में सजीवता प्रस्तुत की है। हिमालय के क्षेत्र कुल्लू, देवताओं का अंचल, मण्डी, मनाली, कटरा आदि क्षेत्रों का वर्णन किया है जिसमें इन्होंने तत्सम, तद्भव व खड़ी बोली एवं आम बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग किया है। इस कारण से पाठक इनके भावों को आसानी से समझ सकता है। प्राकृतिक सौन्दर्य का इतना अनूठा चित्रण किया है जिसे पढ़कर उसके दृश्य अपने चारों ओर घूमते रहते हैं। भाषा में कहीं-कहीं उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे हाइड्रो-इलेक्ट्रिक स्कीम, हैड वर्क्स, लारी, होटल आदि। खड़ी बोली के शब्द चारपाई, दिवालिया, आंचल, पंसारी। तत्सम, तद्भव, सामासिक शब्द—अनिर्वनीण, हुकबन्दी अनुभूति, अक्षरों, हिन्दू धर्म, माण्डलिक आदि।

14. टूटते परिवेश

(विष्णु प्रभाकर)

लेखक परिचय–विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 ई. को मुजफ्फर नगर में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। इसके बाद अध्ययन के लिये पंजाब चले गये। वहाँ हिन्दी, संस्कृत, इतिहास एवं धर्मशास्त्र का अध्ययन किया। इनके मामाजी का प्रभाव इन पर पड़ा जिससे ये गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक बन गये। नौकरी के साथ-साथ इन्होंने साहित्य अध्ययन एवं लेखन का कार्य किया। देश के स्वतन्त्र होने के बाद जब रेडियो रूपकों की माँग बढ़ी तो रेडियो रूपक लिखने के लिये आकृष्ट हुए। इस दिशा में इन्होंने विशिष्ट कीर्तिमान स्थापित किया। इसलिये प्रभाकरजी रेडियो रूपक की शिल्प विधि के कुशल कलाकार माने जाते हैं। इनकी दृष्टि मानवतावादी है।

इन्होंने आदर्श और नैतिक मूल्यों के यथार्थ का चित्रण किया। श्रव्य शिल्प कला की दृष्टि से इनके रेडियो रूपकों का विशेष महत्त्व है। एकांकीकार के रूप में भी इनको प्रसिद्धि मिली। इनके एकांकी संग्रह—बारह एकांकी, दस बजे रात, क्या वह दोषी था, प्रकाश और परछाई, ये रेखाएँ, ये दायरे आदि, रेडियो रूपक—ममता का विष और टूटते परिवेश आदि।

रेडियो रूपक का सामान्य परिचय–विष्णु प्रभाकरजी ने रेडियो रूपक में एक नवीन प्रयोग किया है जिसे एकांकी नाटक कहा जा सकता है। एकांकी को आकाशवाणी प्रसार ने एक नया रूप देकर रेडियो रूपक का नाम दिया गया है। इस रेडियो रूपक में भारतीय संस्कृति की प्रतीक संयुक्त परिवार प्रथा का वर्तमान परिवेश में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार प्रथा टूटती जा रही है, उसका चित्रण करते हुए एक परिवार की घटना का चित्रण किया गया है जिसका मुखिया विश्वजीत है, पत्नी करुणा है। परिवार में चालीस सदस्य हैं। दिवाली पर सभी एक जगह इकट्ठे होकर पूजा करते थे किन्तु वर्तमान परिवेश में रिश्ते टूट गये। अधिकतर लोग अलग हो गये। परिवार आज दीपावली के समय में विश्वजीत व करुणा परिवार के सभी सदस्यों के आने का इन्तजार करते हैं। देर रात तक विश्वजीत, करुणा, विवेक व दीप्ति हैं। शेष अलग-अलग दीपावली मनाने में व्यस्त हैं। विश्वजीत सभी को एकता के सूत्र में जोड़ने के लिये इन्तजार करते हैं। देर रात को उसका भाई अशोक आता है। विवेक है जो नौकरी के लिये सैकड़ों अर्जियाँ दे रखी हैं लेकिन नौकरी नहीं मिलती है। दीप्ति आधुनिकता में खोई हुई है। आधुनिकता को ही सजना-सँवरना करती है। उनका एक लड़का विदेश में रहता है, एक राजनीतिज्ञ है जो आज भी मन्त्री बनने के लिये शासन पक्ष की चमचागिरियाँ कर रहा है। उसी दिन जैसे मंत्री बना तो दूसरे ही दिन सरकार का पतन हो गया। देर रात को उसकी बड़ी लड़की मनीषा का फोन आया कि उसने अशद् से विवाह कर लिया। इसलिये घर नहीं आयेगी, वह विवाह विश्वजीत के सिद्धान्तों के विरुद्ध था फिर भी परिवार के सदस्यों ने भी पिता की ही उपेक्षा की। उधर दीपक से विवेक नौकरी की आशा करता है किन्तु सरकार गिरने के कारण वह हताश हो जाता है और विश्व भ्रमण की योजना बनाता है। विश्वजीत का एक भाई अशोक था जो उसका साथ दे रहा था। परिवार के कुछ सदस्यों ने मिलकर दीपावली की पूजा की है। दीप्ति और विवेक भी एक-दूसरे से झगड़ते रहते हैं। वे एक-दूसरे की कमियाँ ढूँढ़ते रहते हैं। वे भी अपने पिता का खुलकर विरोध करते हैं। कुछ समय पश्चात् परिवार के कुछ सदस्य इकट्ठे होते हैं और विश्वजीत के बारे में बातें करते हैं। वे खोये-खोये रहते हैं, उनका जीवन जड़ जीवन हो गया है। वे आत्महत्या करने की सोच रहे हैं किन्तु बाहर जाकर सोचते हैं कि मरना तो है इसलिये आत्महत्या क्यों करूँ। मुझे तो देखना चाहिए कि संसार में यह क्या-क्या हो रहा है। व्यक्ति को एक-दूसरे से सम्बन्धों को बढ़ाना चाहिए किन्तु आज के परिवेश में तो रिश्ते टूटते जा रहे हैं। सभी व्यक्ति अपने आप में निर्वासित होते जा रहे हैं। सभी पर आधुनिकता का भूत सवार है, सबने भारतीय संस्कृति का परित्याग कर दिया है। व्यक्तियों को चाहिए कि वे एक-दूसरे के सम्बन्धों को बनाये रखें, उन्हें तोड़ने का खिलवाड़ न करें। यदि ऐसा होता रहा तो एक

दिन ऐसा होगा जिसमें भारतीय संस्कृति विलुप्त हो जायेगी और भारतीय भारतीय न होकर विदेशी हो जायेंगे।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) वस्तुपरक प्रश्न–

सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये–

1. विश्वजीत को सम्मिलित परिवार की कौनसी बात सबसे अधिक याद आती थी ?
(क) बालकों का उल्लासभरा शोर (ख) बड़े-बूढ़ों की सुख-दुःख की बातें
(ग) पूजा के वक्त सबका एकत्र होना
(घ) माँ का लड्डू बाँटना। **उत्तर–(ख)**
2. विश्वजीत के लिये सबसे अधिक पीड़ादायक परिस्थिति क्या थी ?
(क) परिवार का टूटना और बिखरना (ख) सन्तान का मनमाना आचरण
(ग) नैतिक आदर्शों का पतन
(घ) गैर-जिम्मेदाराना बर्ताव। **उत्तर–(ग)**
3. टूटते परिवेश का परिणाम क्या होता है ?
(क) अपनी मौज-मस्ती में रहना (ख) बड़ों की इज्जत न करना
(ग) अकेले-अकेले जीने की चाह (घ) आपसी फूट। **उत्तर–(ग)**
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये–
उत्तर–(क) नई राजनीति में धन का, परिश्रम से, आनन्द का अन्तर्आत्मा से, ज्ञान का चरित्र से, व्यापार का नैतिकता से, विज्ञान का मानवीयता से और पूजा का त्याग से कोई सम्बन्ध नहीं है।
(ख) सिद्धान्तहीन राजनीति और काम बिना धन, अन्तर्आत्मा के बिना आनन्द, चरित्र बिना ज्ञान, नैतिकताहीन व्यापार, मानवीयता रहित विज्ञान और त्याग बिना पूजा भारतीय समाज के अवगुण हैं।
5. हाँ अथवा नहीं में उत्तर दीजिये–
(क) क्या आज के समाज में एकल परिवार ही समस्या का हल है ?
उत्तर–नहीं।
(ख) मनीषा ने असद से शादी कर क्या अच्छा काम किया ?
उत्तर–नहीं।
(ग) क्या जोड़-तोड़ की राजनीति देश का भला कर सकती है ?
उत्तर–नहीं।
(घ) क्या युवा पीढ़ी की मनमानी का नतीजा मानसिक शान्ति है ?
उत्तर–नहीं।

(आ) विषयपरक प्रश्न–

प्रश्न 1. 'टूटते परिवेश' शीर्षक रेडियो रूपक की रचना का क्या उद्देश्य है और उससे लेखक क्या प्रतिपादित करना चाहते हैं ?

उत्तर–इस रेडियो रूपक को लिखने का मुख्य उद्देश्य है कि प्रभाकरजी यह समझाना चाह रहे हैं कि वर्तमान परिवेश में स्वतन्त्र भारत में सभी अपनी-अपनी

विचारधाराओं में स्वतन्त्र हो गये जिस पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। भारतीय संस्कृति का विलोप होता जा रहा है। पहले भारत में संयुक्त परिवार प्रथा थी किन्तु आज संयुक्त परिवार प्रथा टूटती जा रही है। बड़ों के उपदेशों की अवहेलना करते जा रहे हैं। इसलिये प्रभाकरजी यह कहना चाहते हैं कि व्यक्ति को आधुनिकता की दौड़ में तो आगे बढ़ना चाहिए किन्तु रिश्तों व सम्बन्धों का पालन करना चाहिए, उनको तोड़ना नहीं चाहिए। आजकल जो नैतिक मूल्यों व आदर्शों का पतन हुआ है उनका परित्याग नहीं करना चाहिए। आज के मनुष्यों को अपने आदर्शों व नैतिक मूल्यों का पालन करना चाहिए नहीं तो आने वाला समय ऐसा होगा जिसमें भारतीय संस्कृति दिखाई ही नहीं देगी और मानवीय मूल्य गिर जायेंगे। भारतीयता का कहीं महत्त्व नहीं होगा। सबको एकता के सूत्र में जोड़ना चाहिए। इसके लिये अपने दायित्व व कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए।

प्रश्न 2. अपने बिखरते हुए परिवार के टूटते परिवेश को देखकर विश्वजीत का मन किन कारणों से व्यथित हो गया ?

उत्तर–विश्वजीत एक लम्बे परिवार का मुखिया था। जैसे-जैसे परिवार के सदस्य सभ्य व शिक्षित होते गये वैसे-वैसे 40 सदस्यों का परिवार टूटता हुआ चला गया। परिवार में कुछ ही सदस्य बचे थे वे भी आधुनिकता के रंग में रंगे हुए ऐसे वक्त के इन्तजार में हैं कि कब परिवार से अलग हों। अपने आप में स्वतन्त्र हो जायें। परिवार के परिवेश को टूटता हुआ देखकर विश्वजीत अत्यन्त व्यथित होता है और परिवार को उपदेश देता है। परिवार के सदस्य उसे रूढ़िवादी समझकर उसकी अवहेलना करते हैं। वह परिवार को एकता के सूत्र में जोड़ना चाहता है। उनको भारतीय संस्कृति के अनुसार चलाना चाहता है, किन्तु परिवार के सदस्य हैं जो कि उसकी बातों को सुनते ही नहीं, उसकी बातों को सुनकर उसका उपहास करते हैं और उसे आधुनिकता का पाठ पढ़ाते हैं। परिवार के छोटे से छोटा व बड़े से बड़ा व्यक्ति उसके विचारों से अलग होता जा रहा है। उसके उपदेशों का उपहास करता है। छोटे भी यही सोचते हैं कि कब हम बालिग हों और इनसे मुक्त हो जायें। इस प्रकार से अपने परिवार पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखकर और भारतीय संस्कृति का परित्याग देखकर मन व्यथित हो उठता है। वह परिवार को एकता के सूत्र में जोड़ने का अत्यन्त प्रयास करता है किन्तु वह उनको एकता के सूत्र में जोड़ने व भारतीय संस्कृति का पालन करवाने में असफल ही होता है। इसलिये व्यथित होकर एक बार तो आत्महत्या करने को मजबूर होता है किन्तु जब वह यह देखता है कि मैं भी क्यों न स्वतन्त्र हो जाऊँ और इनके टूटते हुए परिवेश को देखूँ और दुःखी होता हुआ जीवित रहता है।

प्रश्न 3. आजकल की नवीन युवा पीढ़ी की मानसिकता का तालमेल परम्परागत विचारधारा के साथ क्यों नहीं जम पाता ?

उत्तर–आज का युग विज्ञान का युग है, जिससे आज का मानव आधुनिक हो गया है जिस कारण से आधुनिक मनुष्य ने परम्पराओं का परित्याग कर दिया है। आधुनिक परिवेश में मानव आधुनिकता या यान्त्रिकता को एक मानकर परम्पराओं को तोड़ने का खिलवाड़ करता जा रहा है। आधुनिक मानव पाश्चात्य संस्कृति के कारण अपने आदर्शों व समाज से निर्वासित हो गया है जिससे उसका संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहा क्योंकि आज के मानव ने अपने आपको स्व कोटर में बन्द कर लिया है। इस कारण आज मानव विश्व

स्तर पर निर्वासन या एकाकीपन की पीड़ा का उपभोग कर रहा है । आधुनिक मानव को सोचना चाहिए कि आधुनिकता की जड़ें परम्पराओं में निवास करती हैं । इसलिये मानव को सम्बन्धों को तोड़ने का खिलवाड़ करने की बजाय सम्बन्धों को जोड़ने का प्रयास करना चाहिए । आधुनिक नवीन युग के युवा आधुनिकता की दौड़ में आगे भागने के लिये पाश्चात्य संस्कृति की होड़ में आगे बढ़ते जा रहे हैं । एक-दूसरों को सहयोग देने की बजाय स्वार्थों को सिद्ध कर रहे हैं । उसकी मानसिकता में इतना परिवर्तन आ गया है कि वह किसी के साथ मिलजुल कर कार्य करना ही नहीं चाहता अपितु समाज से दूर हटकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नैतिक मूल्यों व आदर्शों का पतन करता जा रहा है । आधुनिक नवयुवकों की यही मनोकामना है कि जो जितना आधुनिक होगा वह उतना ही ज्यादा सभ्य कहलायेगा । वे परम्परावादी व्यक्ति को रूढ़िवादी कहते हैं उनको हेय भावना से देखते हैं । स्थान-स्थान पर उनका उपहास किया करते हैं, आज के परिवेश में परम्परावादियों का कोई महत्त्व नहीं है, इसलिये यह हो गया है कि प्रायः भारतीय संस्कृति विलुप्त सी हो गई है ।

प्रश्न 4. इस रेडियो और रूपक में परिकल्पित कथावस्तु को आगे बढ़ाने में करुणा और विवेक की क्या भूमिका रही है और क्यों ?

उत्तर–विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित रेडियो रूपक "टूटते परिवेश" में विवेक व करुणा की भी विशेष भूमिका रही है । परिवार का मुखिया विश्वजीत परिवेश के अनुसार रिश्ते को जोड़ना चाहता है । विवेक भी आधुनिकता में खोया हुआ पात्र है । करुणा विश्वजीत की पत्नी है और विवेक की माँ । विवेक विश्वजीत का सबसे छोटा लड़का है । उससे छोटी एक बहन है दीप्ति । विश्वजीत के परिवार के सदस्य एक के बाद एक सम्बन्ध तोड़ते चले जाते हैं । दीपावली के उत्सव पर विश्वजीत सबके साथ पूजा करना चाहता है किन्तु परिवार के सदस्य अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दीपावली मनाते हैं । वह देर तक इन्तजार करता रहता है । करुणा भी उसको यही समझाती है कि जैसा वे करते हैं, करने दो । उनका इनतजार करने से कोई लाभ नहीं है फिर भी वह इन्तजार करता रहता है । दीपक के बारे में समाचार मिलता है तो उसका भाई अशोक आकर विश्वजीत को सन्तुष्ट करता है । इसके बाद देर रात को मनीषा का फोन तो उसे विचलित ही कर देता है । उस समय तो करुणा व विवेक नहीं होते तो हो सकता था कि विश्वजीत को दिल का दौरा पड़ जाता तथा वह समाप्त हो जाता किन्तु उन दोनों ने विश्वजीत को सन्तुष्ट किया और रेडियो रूपक को आगे बढ़ाया । इसके बाद विवेक स्वयं विश्व भ्रमण की योजना के लिये पेशकश करता है । उसके लिये पिता से व्यंग्य के रूप में वार्तालाप होती है । करुणा तो रेडियो रूपक में प्रारम्भ से अन्त तक साथ रहती है । आधुनिकता व परम्पराओं में सामंजस्य बिठाने का प्रयास करती हुई परिवार की सन्तुष्टि करती है और टूटते हुए परिवेश को रोकते हुये विश्वजीत के जीवन की भी रक्षा करती है और एकांकी के अन्त तक उसका साथ देती है इसलिये इस रेडियो रूपक में करुणा व विवेक की भूमिका अहम् भूमिका है ।

प्रश्न 5. उन कारणों का उल्लेख कीजिए जो आज संयुक्त परिवार में एकल परिवार की अभिरुचि का संचार कर रहे हैं ।

उत्तर–आधुनिक युग में मानव पाश्चात्य संस्कृति का शिकार हो गया है जिस कारण से भारतीय संस्कृति का परित्याग कर दिया है । भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार

प्रथा थी किन्तु पाश्चात्य संस्कृति एकल परिवार प्रथा पर बल देती है । प्राचीन व्यक्ति सोचते थे कि व्यक्ति का विकास तभी सम्भव है जब हम एक दूसरे से मिलकर संयुक्त रूप से रहें जिससे हम एक-दूसरे की समस्या का समाधान कर सकें किन्तु आधुनिक युग में मानव की यह मान्यता है कि यदि हम एक साथ संयुक्त परिवार में रहेंगे तो हमारा सर्वांगीण विकास नहीं होगा । क्योंकि सबको परिवार के अनुसार ही चलना होगा । परिवार के सभी व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते हैं । संयुक्त परिवार में सभी व्यक्तियों पर ध्यान नहीं दिया जाता है । उनकी मान्यता है कि बड़ा परिवार दुःख का आधार है । जितना छोटा परिवार होगा उतना व्यक्ति अपने परिवार के विकास के बारे में सोचेगा । संयुक्त परिवार के साथ रहकर व्यक्ति आधुनिक युग के साथ नहीं चल सकता है, परिवार का कोई न कोई सदस्य उसमें बाधक बन ही जायेगा । आधुनिक युग की मान्यता है कि यदि एकल परिवार होगा तो परिवार का पालन-पोषण, शिक्षा, भरण-पोषण उचित प्रकार से किया जायेगा । व्यक्तिगत स्वार्थों से उसका सर्वांगीण विकास संभव होगा । संयुक्त परिवार प्रथा में बच्चों को उचित शिक्षा नहीं दी जा सकती, न उनको सभ्य बनाया जा सकता है । यह आधुनिक व्यक्तियों की मान्यता है इसलिए वे एकल परिवार को ही महत्त्व देते हैं । संयुक्त परिवार को वर्तमान परिवेश में तोड़ते जा रहे हैं । इस प्रकार से कहते हैं कि आधुनिक युग विज्ञान का युग है । इसलिए मानव संयुक्त परिवार के माध्यम से अपना विकास नहीं कर सकता वह तो रिश्तों को तोड़ता जा रहा है । जैसे बच्चा सभ्य व शिक्षित होता है, परिवार से अलग होता है, अपने आपको ''स्व-कोटर'' में बन्द कर लेता है । संयुक्त परिवार प्रथा को रूढ़िवादिता मानकर रिश्तों का परित्याग करता है और एकल परिवार में ही खुश रहता है । वास्तव में चाहे वह दुःखी ही क्यों न हो हकीकत से आँखें बन्द कर लेता है ।

प्रश्न 6. इस रूपक के घटनाचक्र में विश्वजीत ने अपनी किन-किन मजबूरियों का विवरण दिया है ?

उत्तर–लेखक के मतानुसार इस रेडियो रूपक में विश्वजीत भारतीय संस्कृति का प्रतीक स्तम्भ है । वह संयुक्त परिवार प्रथा पर बल देता है किन्तु उसका सम्पूर्ण परिवार जैसे-जैसे सभ्य व शिक्षित बनता गया उस पर पाश्चात्य संस्कृति का भूत सवार होता गया और विश्वजीत जो कई वर्षों तक परिवार को एकता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास करता है वह एक सपने के समान टूटता चला गया । पहले उसके भाई अलग हो गये, फिर बड़ा लड़का अलग होकर विदेश चला गया, उससे छोटा लड़का राजनीति में आकर परिवार से अलग हो गया । मनीषा ने भी विश्वजीत की मर्जी के विरुद्ध अन्तर्जातीय विवाह कर लिया । सबसे छोटा लड़का विवेक भी बेकारी से तंग आकर विश्व भ्रमण की योजना बनाने लगा । इस प्रकार से विश्वजीत से प्रत्येक व्यक्ति दूर होता चला गया और विश्वजीत अपनी मजबूरी समझकर परिवार को एकत्र किये बांधना चाहकर भी नहीं बांध सका । इन मजबूरियों का सामंजस्य उसके मन में करुणा ने बंधाया । वह उनको यही समझाती रहती थी कि आधुनिक युग विज्ञान का युग है इसलिए जैसा होता है या जैसे ये करते हैं करने दीजिए क्योंकि ये आधुनिक युग में प्रवेश कर चुके हैं जो अपना भला-बुरा खुद समझते हैं इसलिए इन पर रोक मत लगाइये । अपनी मजबूरी समझकर जैसा करते हैं करने दीजिए और विश्वजीत भी अपनी मजबूरी समझकर सम्पूर्ण घटनाचक्र को देखता रहता है ।


मैरिट में आये विद्यार्थियों की पहली पसंद
विमल ®
मॉडल टैस्ट पेपर्स
परीक्षा में आने वाले सभी सम्भावित प्रश्नों एवं उत्तरों का सर्वश्रेष्ठ संकलन
अवश्य
कक्षा 8, 9, 10 11 व 12 के लिये
परीक्षा विशेषज्ञ समिति द्वारा सम्पादित
अरूण बुक कम्पनी, ® जयपुर-3